	विषय	पृष्ठ

पंक्ति क्रम

विषय पृष्ठ

	विषय			पृष्ठ
४४	तप रे मधुर मधुर मन	...	...	१९४
४५	तुम चंद्र वदनि ...	...	...	१०२
४६	तुम नील वृंत पर नभ के	...	...	८६
४७	तुम मांस हीन तुम रक्त हीन	...	...	२०३
४८	तुम्हारी आँखों का आकाश	...	...	१६६
४९	तुहिन विन्दु बन कर	...	...	३८
५०	तेरा कैसा गान	...	...	२२८
५१	देखूँ सब के उर की डाली	...	...	१९७
५२	द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र	...	...	२१०
५३	द्वाभा के एकाकी प्रेमी	...	...	९४
५४	नवल मेरे जीवन की डाल	...	...	१६७
५५	निखिल कल्पनामयि अयि अप्सरि		...	१२०
५६	नीरव संध्या में प्रशांत	...	...	९१
५७	नीले नभ के शतदल पर	...	...	९८
५८	न्योछावर स्वर्ग इसी भू पर	...	...	२२४
५९	प्रथम रश्मि का आना	...	...	८३
६०	प्राण, तुम लघु लघु गात	...	...	११७
६१	प्रिये, प्राणों की प्राण	...	...	१५९
६२	बढ़ा और भी तो अंतर	...	...	४९
६३	बना मधुर मेरा जीवन	...	...	४७
६४	बालक के कंपित अधरों पर	...	...	३
६५	बाँसों का झुरमुट	...	...	२१५
६६	मा, अल्मोड़े में आए थे	...	...	३५

'गुञ्जन', 'चारवायु', 'ग्रंथि' नामक रचनाएँ क्रमशः १९३५, १९३१, १९२० में लिखी गई हैं। अन्य जिन कविताओं के नीचे रचना काल नहीं छप सका है वे 'ज्योत्स्ना' से ली गई हैं, जिसका रचना काल १९३२ है।

पल्लविनी

प्रार्थना

जग के उर्वर आँगन में
बरसो ज्योतिर्मय जीवन!
बरसो लघु लघु तृण तरु पर
हे चिर अव्यय, चिर नूतन!
बरसो कुसुमों में मधु बन,
प्राणों में अमर प्रणय धन;
स्मिति स्वप्न अधर पलकों में,
उर अंगों में सुख यौवन!

छू छू जग के मृत रज कण
कर दो तृण तरु में चेतन,
मृन्मरण बाँध दो जग का,
दे प्राणों का आलिंगन!
बरसो सुख बन, सुखमा बन,
बरसो जग जीवन के घन!
दिशि दिशि में औ' पल पल में
बरसो संसृति के सावन!

जून, १९३०]

जिज्ञासा

शांत सरोवर का उर
किस इच्छा से लहरा कर
हो उठता चंचल, चंचल ?

सोए वीणा के सुर
क्यों मधुर स्पर्श से मर् मर्
बज उठते प्रतिपल, प्रतिपल !

आशा के लघु अंकुर
किस सुख से फड़का कर पर
फैलाते नव दल पर दल !

मानव का मन निष्ठुर
सहसा आँसू में झर झर
क्यों जाता पिघल पिघल गल ?

मैं चिर उत्कंठातुर
जगती के अखिल चराचर
यों मौन-मुग्ध किसके बल !

फ़रवरी, १९३२]

स्वप्न

बालक के कंपित अधरों पर
किस अतीत स्मृति का मृदु हास
जग की इस अविरत निद्रा का
करता नित रह रह उपहास ?
उस स्वप्नों की स्वर्ण सरिता का
सजनि ! कहाँ शुचि जन्मस्थान,
मुसकानों में उछल उछल मृदु,
बहती वह किस ओर अजान ?

किन कर्मों की जीवित छाया
उस निद्रित विस्मृति के संग
आँखमिचौनी खेल रही वह,
किन भावों की गूढ़ उमंग ?
मुँदे नयन पलकों के भीतर
किस रहस्य का सुखमय चित्र
गुप्त वंचना के मादक कर
खींच रहे सखि ! स्वर्ण-विचित्र ?

निद्रा के उस अलसित वन में
वह क्या भावी की छाया

दृग पलकों में विचर रही, या
वन्य देवियों की माया ?
नयन नीलिमा के लघु नभ में
अलि ! किस सुखमा का संसार
विरल इंद्रधनुषी बादल सा
बदल रहा निज रूप अपार ?

मुकुलित पलकों के प्यालों में
किस स्वप्निल मदिरा का राग
इंद्रजाल सा गूँथ रहा नव,
किन पुष्पों का स्वर्ण पराग ?
किन इच्छाओं के पंखों में
उड़ उड़ ये आँखें अनजान
मधु बालों सी, छाया वन की
कलियों का मधु करतीं पान ?

मानस की सस्मित लहरों पर
किस छवि की किरणें अज्ञात
रजत स्वर्ण में लिखतीं अविदित
तारक लोकों की शुचि बात ?
किन जन्मों की चिर संचित सुधि
बजा सुप्त तंत्री के तार
नयन नलिन में बँधी मधुप सी
करती मर्म मधुर गुंजार ?

पलक यवनिका के भीतर छिप,
हृदय मंच पर छा छविमय,
सजनि ! अलस के मायावी शिशु
खेल रहे कैसा अभिनय ?
मीलित नयनों का अपना ही
यह कैसा छायामय लोक,
अपने ही सुख, दुख, इच्छाएँ,
अपनी ही छवि का आलोक !

मौन मुकुल में छिपा हुआ जो
रहता विस्मय का संसार
सजनि ! कभी क्या सोचा तूने
वह किसका शुचि शयनागार ?
प्रथम स्वप्न उसमें जीवन का
रहता चिर अविकच, अज्ञान,
जिसे न चिन्ता छू पाती औ'
जो केवल मृदु अस्फुट गान।

जब शशि की शीतल छाया में
रुचिर रजत किरणें सुकुमार
प्रथम खोलतीं नव कलिका के
अन्तःपुर के कोमल द्वार,

अलिबाला से सुन तब सहसा,—
'जग है केवल स्वप्न असार',
अर्पित कर देती मारुत को
वह अपने सौरभ का भार।

हिमजल बन, तारक पलकों से
उमड़ मोतियों-से अवदात,
सुमनों के अधखुले दृगों में
स्वप्न लुढ़कते जो नित प्रात;
उन्हें सहज अंचल में चुन चुन,
गूँथ उषा किरणों में हार
क्या अपने उर के विस्मय का
तूने कभी किया शृंगार?

विजन नीड़ में चौंक अचानक,
विटप बालिका पुलकित गात
जिन सुवर्ण स्वप्नों की गाथा
गा गा कर कहती अज्ञात;
सजनि! कभी क्या सोचा तूने
तरुओं के तम में चुपचाप,
दीप शलभ दीपों को चमका
करते जो मृदु मौनालाप?

अलि ! किस स्वप्नों की भाषा में
इंगित करते तरु के पात,
कहाँ प्रात को छिपती प्रतिदिन
वह तारक स्वप्नों की रात ?
दिनकर की अन्तिम किरणों ने
उस नीरव तरु के ऊपर
स्वप्नों का जो स्वर्ण जाल है
फैलाया सुखमय, सुंदर;

विहग बालिका बन हम दोनों,
बैठ वहाँ पल भर एकांत,
चल सखि ! स्वप्नों पर कुछ सोचें,
दूर करें निज भ्रांति नितांत।
सजनि ! हमारा स्वप्न सदन क्यों
सिहर उठा सहसा थर् थर् !
किस अतीत के स्वप्न अनिल में
गूँज उठे, कर मृदु मर् मर् !

विरस डालियों से यह कैसा
फूट रहा हा ! रुदन मलिन,—
'हम भी हरी भरी थीं पहिले,
पर अब स्वप्न हुए वे दिन !'

पत्रों के विस्मित अधरों से
संसृति का अस्फुट संगीत
मौन निमंत्रण भेज रहा वह
अंधकार के पास सभीत !

सघन द्रुमों में झूम रहा अब
निद्रा का नीरव निःश्वास,
मूँद रहा घन अंधकार में
रह रह अलस पलक आकाश !
जग के निद्रित स्वप्न सजनि ! सब
इसी अंध तम में बहते,
पर जागृति के स्वप्न हमारे
सुप्त हृदय ही में रहते।

अह, किस गहरे अंधकार में
डूब रहा धीरे संसार,
कौन जानता है, कब इसके
छूटेंगे ये स्वप्न असार !
अलि ! क्या कहती है, प्राची से
फिर उज्वल होगा आकाश ?
पर, मेरे तम पूर्ण हृदय में
कौन भरेगा प्रकृत प्रकाश !

नवम्बर, १९१९]

स्वप्न-कल्पना

शिशुओं के अविकच उर में
हम चिर रहस्य बन रहते।
छाया-वन के गुंजन में
युग युग की गाथा कहते!
अनिमिष तारक पलकों पर
हम भावी का पथ तकते।
नव युग की स्वर्ण कथाएँ
ऊषा अंचल पर लिखते!
सीमाएँ बाधा बंधन,
निःसीम सदैव विचरते;
हम जगती के नियमों पर
अनियम से शासन करते!
हम मनोलोक से जग में
युग युग में आते जाते,
नव जीवन के ज्वारों में
दिशि पल के पुलिन डुबाते!

निद्रा का गीत

सोओ, सोओ, तात!
सोए तरु-वन में खग,
सरसी में जलजात!
सजग गगन के तारक
भू प्रहरी प्रख्यात,
सोओ जग दृग तारक,
भूलो पलक निपात!
चपल वायु सा मानस,
पा स्मृतियों के घात
भावों में मत लहरे,
विस्मृत हो जा गात!
जाग्रत उर में कम्पन,
नासा में हो वात,
सोएँ सुख, दुख, इच्छा,
आशाएँ अज्ञात!
विस्मृति के तंद्रालस
तमसांचल में, रात,—
सोओ जग की संध्या,
होवे नवयुग प्रात!

मौन निमंत्रण

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान;
न जाने, नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन !

सघन मेघों का भीमाकाश
गरजता है जब तमसाकार,
दीर्घ भरता समीर निःश्वास,
प्रखर झरती जब पावस धार;
न जाने, तपक तड़ित में कौन
मुझे इंगित करता तब मौन !

देख वसुधा का यौवन भार
गूँज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर के से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास
न जाने, सौरभ के मिस कौन
सँदेशा मुझे भेजता मौन !

क्षुब्ध जल शिखरों को जब वात
सिन्धु में मथकर फेनाकार,
बुलबुलों का व्याकुल संसार
बना, बिथुरा देती अज्ञात;
उठा तब लहरों से कर कौन
न जाने, मुझे बुलाता मौन!

स्वर्ण, सुख, श्री, सौरभ में भोर
विश्व को देती है जब बोर,
विहग कुल की कल कंठ हिलोर
मिला देती भू नभ के छोर;
न जाने, अलस पलक दल कौन
खोल देता तब मेरे मौन!

तुमुल तम में जब एकाकार
ऊँघता एक साथ संसार,
भीरु झींगुर कुल की झनकार
कँपा देती तंद्रा के तार;
न जाने, खद्योतों से कौन
मुझे पथ दिखलाता तब मौन!

कनक छाया में, जब कि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार,
सुरभि पीड़ित मधुपों के बाल

तड़प, बन जाते हैं गुंजार;
न जाने, ढुलक ओस में कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन!

बिछा कार्यों का गुरुतर भार
दिवस को दे सुवर्ण अवसान,
शून्य शय्या में, श्रमित अपार,
जुड़ाता जब मैं आकुल प्राण;
न जाने, मुझे स्वप्न में कौन
फिराता छाया जग में मौन!

न जाने कौन, अये द्युतिमान!
जान मुझको अबोध, अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूँक देते छिद्रों में गान;
अहे सुख दुख के सहचर मौन!
नहीं कह सकता तुम हो कौन!

नवम्बर, १९२३]

शिशु भावना

आज शिशु के कवि को अनजान
मिल गया अपना गान!

खोल कलियों ने उर के द्वार
दे दिया उसको छवि का देश;
बजा भौंरों ने मधु के तार
कह दिए भेद भरे संदेश;
आज सोये खग को अज्ञात
स्वप्न में चौंका गई प्रभात;
गूढ़ संकेतों में हिल पात
कह रहे अस्फुट बात;
आज कवि के चिर चंचल प्राण
पा गए अपना गान!

दूर, उन खेतों के उस पार,
जहाँ तक गई नील झंकार,
छिपा छाया-वन में सुकुमार
स्वर्ग की परियों का संसार;

वहीं, उन पेड़ों में अज्ञात
चाँद का है चाँदी का वास,
वहीं से खद्योतों के साथ
स्वप्न आते उड़ उड़ कर पास।
इन्हीं में छिपा कहीं अनजान
मिला कवि को निज गान!

जनवरी, १६२६]

अंधकार के प्रति

अब न अगोचर रहो सुजान !
निशानाथ के प्रियवर सहचर !
अंधकार, स्वप्नों के यान !
किसके पद की छाया हो तुम ?
किसका करते हो अभिमान ?
तुम अदृश्य हो; दृग अगम्य हो,
किसे छिपाये हो छविमान !
मेरे स्वागत-भरे हृदय में
प्रिय तम ! आओ, पाओ स्थान !
जब तुम मुझे गभीर गोद में
लेते हो, हे करुणावान !
मेरी छाया भी तब मेरा
पा सकती है नहीं प्रमाण !
प्रथम-रश्मि का स्पर्शन कर नित,
स्वर्ण वस्त्र करके परिधान,
तुम आश्वासन देते हो, प्रिय !
जग को उज्वल और महान।
जब प्रदीप के सम्मुख मैं भी
गई जलाने निज अज्ञान,

तब तुम उसके चरणों में थे
पाए हुए सुखद सम्मान,
अपने काले पट में मेरा
प्रिय ! लपेटकर मत्सर, मान,
रंग रहित होकर छिप रहना
मुझको भी बतला दो प्राण !

१९१८]

छाया

कौन, कौन तुम परिहत वसना,
म्लान मना, भू पतिता सी,
वात हता विच्छिन्न लता सी,
रति श्रांता व्रज वनिता सी?
नियति वंचिता, आश्रय रहिता,
जर्जरिता, पद दलिता सी,
धूलि धूसरित मुक्त कुंतला,
किसके चरणों की दासी?

कहो, कौन हो दमयंती सी
तुम द्रुम के नीचे सोई?
हाय! तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि! नल सा निष्ठुर कोई?
पीले पत्रों की शय्या पर
तुम विरक्ति सी, मूर्छा सी,
विजन विपिन में कौन पड़ी हो
विरह मलिन, दुख विधुरा सी?

गूढ़ कल्पना सी कवियों की,
अज्ञाता के विस्मय सी,

ऋषियों के गंभीर हृदय सी,
बच्चों के तुतले भय सी;
आशा के नव इंद्रजाल सी,
सजनि ! नियति सी अंतर्धान,
कहो कौन तुम तरु के नीचे
भावी सी हो छिपी अजान ?

चिर अतीत की विस्मृत स्मृति सी,
नीरवता की सी झंकार,
आँखमिचौनी सी असीम की,
निर्जनता की सी उद्गार;
किस रहस्यमय अभिनय की तुम
सजनि ! यवनिका हो सुकुमार,
इस अभेद्य पट के भीतर है
किस विचित्रता का संसार ?

निर्जनता के मानस पट पर
—बार बार भर ठंढी साँस—
क्या तुम छिप कर क्रूर काल का
लिखती हो अकरुण इतिहास ?
सखि ! भिखारिणी सी तुम पथ पर
फैला कर अपना अंचल,

सूखे पातों ही को पा क्या
प्रमुदित रहती हो प्रतिपल ?

पत्रों के अस्फुट अधरों से
संचित कर सुख दुख के गान,
सुला चुकी हो क्या तुम अपनी
इच्छाएँ सब अल्प, महान ?
कभी लोभ सी लंबी होकर,
कभी तृप्ति सी होकर पीन,
तुम संसृति की अचिर भूति या
सजनि, नापती हो स्थिति-हीन।

कालानिल की कुञ्चित गति से
बार बार कंपित होकर,
निज जीवन के मलिन पृष्ठ पर
नीरव शब्दों में निर्भर
किस अतीत का करुण चित्र तुम
खींच रही हो कोमलतर,
भग्न भावना, विजन वेदना
विफल लालसाओं से भर ?

ऐ अवाक् निर्जन की भारति !
कंपित अधरों से अनजान

मर्म मधुर किस सुर में गाती
तुम अरण्य के चिर आख्यान ?
ऐ अस्पृश्य, अदृश्य अप्सरसि !
यह छाया तन, छाया लोक,
मुझको भी दे दो मायाविनि !
उर की आँखों का आलोक !

थके चरण चिह्नों को अपनी
नीरव उत्सुकता से भर,
दिखा रही हो क्या तुम जग को
पर सेवा का मार्ग अमर ?
श्रमित तपित अवलोक पथिक को
रहती या यों दीन, मलीन ?
ऐ विटपी की व्याकुल प्रेयसि !
विश्व वेदना में तल्लीन ।

दिनकर कुल में दिव्य जन्म पा,
बढ़ कर नित तरुवर के संग
मुरझे पत्रों की साड़ी से
ढँक कर अपने कोमल अंग;
सदुपदेश सुमनों से तरु के
गूँथ हृदय का सुरभित हार,

पर सेवा रत रहती हो तुम,
हरती नित पथ श्रांति अपार।

हे सखि ! इस पावन अंचल से
मुझको भी निज मुख ढँक कर
अपनी विस्मृत सुखद गोद में
सोने दो सुख से क्षण भर !
चूर्ण शिथिलता सी अँगड़ा कर
होने दो अपने में लीन,
पर पीड़ा से पीड़ित होना
मुझे सिखा दो, कर मद हीन।

× × ×

गाओ गाओ, विहग बालिके !
तरुवर से मृदु मंगल गान,
मैं छाया में बैठ तुम्हारे
कोमल स्वर में कर लूँ स्नान।
—हाँ, सखि, आओ, बाँह खोल हम
लग कर गले जुड़ालें प्राण ?
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में
हो जावें द्रुत अंतर्धान।

दिसम्बर, १६२०]

छाया

खोलो, मुख से घूँघट खोलो,
हे चिर अवगुण्ठनमयि, बोलो !
क्या तुम केवल चिर अवगुण्ठन,
अथवा भीतर जीवन कंपन ?
कल्पना मात्र मृदु देह लता,
पा ऊर्ध्व ब्रह्म, माया विनता !
है स्पृश्य, स्पर्श का नहीं पता,
है दृश्य, दृष्टि पर सके बता !

पट पर पट केवल तम अपार,
पट पर पट खुले, न मिला पार !
सखि, हटा अपरिचय अंधकार
खोलो रहस्य के मर्म द्वार !
मैं हार गया तह छील छील,
आँखों से प्रिय छवि लील लील,
मैं हूँ या तुम ? यह कैसा छल !
या हम दोनों, दोनों के बल ?

तुम में कवि का मन गया समा,
तुम कवि के मन की हो सुषमा ;

हम दो भी हैं या नित्य एक ?
तब कोई किसको सके देख ?

ओ मौन चिरंतन, तम-प्रकाश,
चिर अवचनीय, आश्चर्य पाश !
तुम अतल गर्त्त, अविगत, अकूल,
फैली अनंत में बिना मूल !
अज्ञेय, गुह्य, अग जग छाई,
माया, मोहिनि, सँग सँग आई !
तुम कुहुकिनी, जग की मोह निशा,
मैं रहूँ सत्य, तुम रहो मृषा !

अप्रैल' ३६]

छाया

कौन कौन तुम परिहत वसना,
म्लान मना, भू पतिता सी ?
धूलि धूसरित, मुक्त कुंतला,
किसके चरणों की दासी ?
अहा ! अभागिन हो तुम मुझसी
सजनि ! ध्यान में अब आया,
तुम इस तरुवर की छाया हो,
मैं उनके पद की छाया !

विजन निशा में सहज गले तुम
लगती हो फिर तरुवर के,
आनंदित होती हो सखि ! नित
उसकी पद सेवा करके।
और हाय ! मैं रोती फिरती
रहती हूँ निशि दिन वन वन,
नहीं सुनाई देती फिर भी
वह वंशी ध्वनि मन मोहन !

सजनि! सदा श्रम हरती हो तुम
पथिकों का, शीतल करके,
मुझ पथिकिनि को भी आश्रय दो,
मनस्ताप मेरा हरके!

१६१८]

छाया का गीत

अलस पलक, सघन अलक,
श्यामल छवि छाया ।
स्वप्निल मन, तंद्रिल तन,
शिथिल वसन भाया ।

जीवन में धूप छाँह,
सुख दुख के गले बाँह;
मिटती सुख की न चाह,
अमिट मोह माया ।

जग के मग में उदास
आओ यदि, पांथ ! पास,
हरूँ सकल ताप त्रास,
शीतल हो काया ।

बादल

सुरपति के हम ही हैं अनुचर,
जगत्प्राण के भी सहचर;
मेघदूत की सजल कल्पना,
चातक के चिर जीवनधर;
मुग्ध शिखी के नृत्य मनोहर,
सुभग स्वाति के मुक्ताकर,
विहग वर्ग के गर्भ विधायक,
कृषक बालिका के जलधर।

भूमि गर्भ में छिप विहंग-से,
फैला कोमल, रोमिल पंख,
हम असंख्य अस्फुट बीजों में
सेते साँस, छुड़ा जड़ पंक;
विपुल कल्पना-से त्रिभुवन की
विविध रूप धर, भर नभ अंक,
हम फिर क्रीड़ा कौतुक करते,
छा अनंत उर में निःशंक।

कभी चौकड़ी भरते मृग-से
भू पर चरण नहीं धरते,

मत्त मतंगज कभी झूमते,
सजग शशक नभ को चरते;
कभी कीश-से अनिल डाल में
नीरवता से मुँह भरते,
वृहत् गृद्ध-से विहग छदों को
बिखराते नभ में तरते।

कभी अचानक, भूतों का सा
प्रकटा विकट महा आकार,
कड़क, कड़क, जब हँसते हम सब,
थर्रा उठता है संसार;
फिर परियों के बच्चों से हम
सुभग सीप के पंख पसार,
समुद पैरते शुचि ज्योत्स्ना में,
पकड़ इंदु के कर सुकुमार!

अनिल विलोड़ित गगन सिन्धु में
प्रलय बाढ़ से चारों ओर
उमड़ उमड़ हम लहराते हैं
बरसा उपल, तिमिर, घनघोर;
बात बात में, तूल तोम सा
व्योम विटप से झटक, झकोर,

हमें उड़ा ले जाता जब द्रुत
दल बल युत घुस वातुल चोर।

व्योम विपिन में जब वसंत सा
खिलता नव पल्लवित प्रभात,
बहते हम तब अनिल स्रोत में
गिर तमाल तम के-से पात;
उदयाचल से बाल हंस फिर
उड़ता अंबर में अवदात,
फैल स्वर्ण पंखों से हम भी,
करते द्रुत मारुत से बात।

पर्वत से लघु धूलि, धूलि से
पर्वत बन, पल में, साकार—
काल चक्र-से चढ़ते, गिरते,
पल में जलधर, फिर जलधार;
कभी हवा में महल बना कर,
सेतु बाँध कर कभी अपार,
हम विलीन हो जाते सहसा
विभव भूति ही-से निस्सार।

हम सागर के धवल हास हैं,
जल के धूम, गगन की धूल,

अनिल फेन, ऊषा के पल्लव,
वारि वसन, वसुधा के मूल;
नभ में अवनि, अवनि में अंबर,
सलिल भस्म, मारुत के फूल,
हम ही जल में थल, थल में जल,
दिन के तम, पावक के तूल।

व्योम बेलि, ताराओं की गति,
चलते अचल, गगन के गान,
हम अपलक तारों की तंद्रा,
ज्योत्स्ना के हिम, शशि के यान;
पवन धेनु, रवि के पांशुल श्रम,
सलिल अनल के विरल वितान,
व्योम पलक, जल खग, बहते थल,
अंबुधि की कल्पना महान।

× × ×

धूम धुँआरे, काजर कारे,
हम ही विकरारे बादर,
मदन राज के वीर बहादर,
पावस के उड़ते फणिधर,

चमक झमकमय मंत्र वशीकर,
छहर घहरमय विष सीकर,
स्वर्ग सेतु-से इंद्रधनुषधर,
कामरूप घनश्याम अमर।

अप्रैल, १९२२]

काला बादल

काला तो यह बादल है!
कुमुद कला है जहाँ किलकती
वह नभ जैसा निर्मल है,
मैं वैसी ही उज्वल हूँ मा!
काला तो यह बादल है!

मेरा मानस तो शशि-हासिनि!
तेरी क्रीड़ा का स्थल है,
तेरे मेरे अंतर में मा!
काला तो यह बादल है!

तेरी किरणों से ही उतरा
मोती-सा शुचि हिमजल है,
मा! इसको भी छू दे कर से
काला जो यह बादल है!

तब तू देखेगी मेरा मन
कितना निर्मल, निश्छल है,
जब दृग जल बन बह जावेगा
काला जो यह बादल है!

१६१८]

कृष्णा

"मा ! काले रँग का दुकूल नव
मुझको बनवा दो सुंदर,
जिसमें सब कुछ छिप जाता है,
रहती नहीं धूलि की डर;
जिसमें चिह्न नहीं पड़ते, जो
नहीं दीखता है श्री हीन,
लोग नहीं तो हँसी करेंगे
देख मुझे मैली औ' दीन।"

"अरी, अभी तू बच्ची ही है
कृष्णे ! निरी अबोध, चपल,
मैं मलमल की साड़ी तुझको
बनवाऊँगी फेनोज्वल;
दिखलाई दें जिसमें सबको
तेरे छोटे-से भी अंक,
बार बार सहमे तू जिससे
रहे शुद्ध औ' स्वच्छ, सशंक।"

१९१८]

आशंका

"मा ! अल्मोड़े में आए थे
जब राजर्षि विवेकानंद,
तब मग में मखमल बिछवाया,
दीपावलि की विपुल अमंद;
बिना पाँवड़े पथ में क्या वे
जननि ! नहीं चल सकते हैं ?
दीपावलि क्यों की ? क्या वे मा !
मंद दृष्टि कुछ रखते हैं ?"

"कृष्णे ! स्वामीजी तो दुर्गम
मग में चलते हैं निर्भय,
दिव्य दृष्टि हैं, कितने ही पथ
पार कर चुके कंटकमय;
वह मखमल तो भक्ति भाव थे
फैले जनता के मन के,
स्वामी जी तो प्रभावान हैं,
वे प्रदीप थे पूजन के।"

१६१८]

कृषक बाला

उस सीधे जीवन का श्रम
हेम हास से शोभित है नव
पके धान की डाली में,—
कटनी के घूँघुर रुन झुन
(बज बजकर मृदु गाते गुन,)
केवल श्रांता के साथी हैं
इस ऊषा की लाली में।
मा! अपने जन का पूजन
ग्रहण करो 'पत्रं पुष्पम्',
सरल नाल-सा सीधा जीवन
स्वर्ण मंजरी से भूषित,
बाली से श्रृंगार तुम्हारा
करता है वय बाली में!
सास-ननद भय, भूख अजय,
श्रांति, अलस औ' श्रम अतिशय,
तथा काँस के नव गहनों से
अर्चन करता है सादर—
आश्विन सुषमाशाली में!

१६१८]

अभिलाषा

मेरे मानस का आवेश,
तेरी करुणा का उन्मेष,
भीरु घनों सा गरज गरज कर
इसको बिखर न जाने दे।
निज चरणों में पिघल पिघल कर
स्नेह अश्रु बरसाने दे।

भव्य भक्ति का भावन मेल,
तेरा मेरा मंजुल खेल,
सघन हृदय में विद्युत सा जल
इसे न मा! बुझ जाने दे।
मलिन मोह की मेघ निशा में
दिव्य विभा फैलाने दे।

विश्व प्रेम का रुचिकर राग,
पर-सेवा करने की आग,
इसको संध्या की लाली सी
मा! न मंद पड़ जाने दे।
द्वेष द्रोह को सांध्य जलद सा
इसकी छटा बढ़ाने दे।

१९१८]

आकांक्षा

तुहिन विन्दु बनकर सुन्दर,
कुमुद किरण से सहज उतर,
मा! तेरे प्रिय पद पद्मों में
अर्पण जीवन को कर दूँ—
इस ऊषा की लाली में!

तरल तरंगों में मिलकर,
उछल उछलकर, हिल हिल कर,
मा! तेरे दो श्रवण पुटों में
निज क्रीड़ा कलरव भर दूँ—
उभर अधखिली बाली में!

रजत रेत बन, कर झलमल,
तेरे जल से हो निर्मल,
माया सागर में डूबों का
सोख सोख रति रस हर दूँ—
ओप भरी दोपहरी में।

बन मरीचिका सी चंचल,
जग की मोह तृषा को छल,
सूखे मरु में मा! शिक्षा का
स्रोत छिपा सम्मुख धर दूँ—
यौवन मद की लहरी में!

विटप डाल में बना सदन,
पहन गेरुवे रँगे वसन,
विहग-बालिका बन, इस वन को
तेरे गीतों से भर दूँ—
संध्या के उस शांत समय!

कुमुद कला बन कल हासिनि,
अमृत प्रकाशिनि, नभ वासिनि,
तेरी आभा को पाकर मा!
जग का तिमिर त्रास हर दूँ—
नीरव रजनी में निर्भय!

१९१८]

बालापन

चित्रकार ! क्या करुणा कर फिर
मेरा भोला बालापन
मेरे यौवन के अंचल में
चित्रित कर दोगे पावन ?
जब कि कल्पना की तंत्री में
खेल रहे थे तुम करतार !
तुम्हें याद होगी, उससे जो
निकली थी अस्फुट झंकार ?
हाँ, हाँ, वही, वही, जो जल, थल,
अनिल, अनल, नभ से उस बार
एक बालिका के क्रंदन में
ध्वनित हुई थी, बन साकार।

वही प्रतिध्वनि निज बचपन की
कलिका के भीतर अविकार
रज में लिपटी रहती थी नित,
मधुबाला की सी गुंजार;
यौवन के मादक हाथों ने
उस कलिका को खोल अजान,
छीन लिया हा ! ओस बिन्दु सा
मेरा मधुमय, तुतला गान !

अहो विश्वसृज ! पुनः गूँथ दो
वह मेरा बिखरा संगीत
मा की गोदी का थपकी से
पला हुआ वह स्वप्न पुनीत।

वह ज्योत्स्ना से हर्षित मेरा
कलित कल्पनामय संसार,
तारों के विस्मय से विकसित
विपुल भावनाओं का हार;
सरिता के चिकने उपलों सी
मेरी इच्छाएँ रंगीन,
वह अजानता की सुंदरता,
वृद्ध विश्व का रूप नवीन;
अहो कल्पनामय ! फिर रच दो
वह मेरा निर्भय अज्ञान,
मेरे अधरों पर वह मा के
दूध से धुली मृदु मुसकान।
मेरा चिन्ता रहित, अनलसित,
वारि बिम्ब सा विमल हृदय,
इंद्रचाप सा वह बचपन के
मृदुल अनुभवों का समुदय;
स्वर्ण गगन सा, एक ज्योति से
आलिंगित जग का परिचय,

इंदु विचुंबित बाल जलद सा,
मेरी आशा का अभिनय;
इस अभिमानी अंचल में फिर
अंकित कर दो, विधि! अकलंक,
मेरा छीना बालापन फिर
करुण! लगा दो मेरे अंक।

विहग बालिका का सा मृदु स्वर,
अर्ध खिले, नव कोमल अंग,
क्रीड़ा कौतूहलता मन की,
वह मेरी आनंद-उमंग;
अहो दयामय! फिर लौटा दो
मेरी पद प्रिय चंचलता,
तरल तरंगों सी वह लीला,
निर्विकार भावना लता।

धूँलभरे, घुँघराले, काले,
भय्या को प्रिय मेरे बाल,
माता के चिर चुंबित मेरे
गोरे, गोरे, सस्मित गाल;
वह काँटों में उलझी साड़ी,
मंजुल फूलों के गहने,
सरल नीलिमामय मेरे दृग
अश्रु हीन, संकोच सने;

उसी सरलता की स्याही से
सदय! इन्हे अंकित कर दो,
मेरे यौवन के प्याले में
फिर वह बालापन भर दो।

हा मेरे! बचपन-से कितने
बिखर गए जग के शृंगार!
जिनकी अविकच दुर्बलता ही
थी जग की शोभालंकार;
जिनकी निर्भयता विभूति थी,
सहज सरलता शिष्टाचार,
औ' जिनकी अबोध पावनता
थी जग के मंगल की द्वार!

—हे विधि! फिर अनुवादित कर दो
उसी सुधा स्मिति में अनुपम
मा के तन्मय उर से मेरे
जीवन का तुतला उपक्रम!

मार्च, १९१९]

शिशु

कौन तुम अतुल, अरूप, अनाम ?
अये अभिनव, अभिराम !
मृदुलता ही है बस आकार !
मधुरिमा—छवि, शृंगार ?
न अंगों में है रंग, उभार,
न मृदु उर में उद्गार;
निरे साँसों के पिञ्जर द्वार !
कौन हो तुम अकलंक, अकाम ?
कामना-से मा की सुकुमार
स्नेह में चिर साकार;
मृदुल कुड्मल-से, जिसे न ज्ञात
सुरभि का निज संसार;
स्रोत-से नव, अवदात,
स्खलित अविदित पथ पर अविचार;
कौन तुम गूढ़, गहन, अज्ञात !
अहे निरुपम, नवजात !
खेलती अधरों पर मुसकान,
पूर्व सुधि सी अम्लान;

सरल उर की सी मृदु आलाप,
अनवगत जिसका गान;
कौन सी अमर गिरा यह, प्राण!
कौन से राग, छंद, आख्यान?
(स्वप्न लोकों में किन चुपचाप
विचरते तुम इच्छा-गतिवान!
न अपना ही, न जगत का ज्ञान,
न परिचित हैं निज नयन, न कान;
दीखता है जग कैसा तात!
नाम, गुण, रूप अजान?)
तुम्हीं सा हूँ मैं भी अज्ञात,
वत्स! जग है अज्ञेय महान!

नवम्बर, १९२३]

मोह

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले ! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?
भूल अभी से इस जग को !

तजकर तरल तरंगों को,
इंद्रधनुष के रंगों को,
तेरे भ्रू भंगों से कैसे बिंधवा दूँ निज मृग सा मन ?
भूल अभी से इस जग को !

कोयल का वह कोमल बोल,
मधुकर की वीणा अनमोल,
कह, तब तेरे ही प्रिय स्वर से कैसे भर लूँ सजनि ! श्रवण ?
भूल अभी से इस जग को !

ऊषा सस्मित किसलय दल,
सुधारश्मि से उतरा जल,
ना, अधरामृत ही के मद में कैसे बहला दूँ जीवन ?
भूल अभी से इस ज़ग को !

जनवरी, १९१८]

याचना

बना मधुर मेरा जीवन !

नव नव सुमनों से चुन चुन कर
धूलि, सुरभि, मधुरस, हिमकण,
मेरे उर की मृदु कलिका में
भर दे, कर दे विकसित मन।
बना मधुर मेरा भाषण !
वंशी से ही कर दे मेरे
सरल प्राण औ' सरल वचन,
जैसा जैसा मुझको छेड़ें,
बोलूँ अधिक मधुर, मोहन;
जो अकर्ण अहि को भी सहसा
कर दे मंत्र मुग्ध, नत फन,
रोम रोम के छिद्रों से मा !
फूटे तेरा राग गहन !

बना मधुर मेरा तन, मन !

जनवरी, १६१६]

विनय

मा! मेरे जीवन की हार
तेरा मंजुल हृदय हार हो,
अश्रुकणों का यह उपहार;
मेरे सफल श्रमों का सार
तेरे मस्तक का हो उज्वल
श्रमजलमय मुक्तालंकार।

मेरे भूरि दुखों का भार
तेरी उर इच्छा का फल हो,
तेरी आशा का शृंगार;
मेरे रति, कृति, व्रत, आचार
मा! तेरी निर्भयता हों नित
तेरे पूजन के उपचार—
यही विनय है बारंबार।

जनवरी, १९१८]

अंतर

बढ़ा और भी तो अंतर !
जिनको तूने सुखद सुरभि दी,
मा ! जिनको छवि दी सुंदर,
मैं उनके ढिग गई व्यग्र हो,
तुझे ढूँढ़ने को सत्वर।
मधु बाला बन मैंने उनके
गाए गीत, गूँज मृदुतर,
पर मैं अपने साथ तुझे भी
भूल गई मोहित होकर !

१६१८]

निवेदन

यह चरित्र मा! जो तूने है
चित्रित किया नयन सम्मुख,
गा न सकी यदि मैं इसको तो
मुझको इसमें भी है सुख!
वह बेला जो बतलाई थी
तूने अरुणोदय के पास,
पा न सकी यदि उसमें तुझको
मैं तब भी हूँगी न विमुख!
वे मोती जो दिखलाये थे
तू ने ऊषा के वन में
उन्हें लोग यदि ले लेंगे तो
मलिन न होगा मेरा मुख!
तू कितनी प्यारी है मुझको
जननि, कौन जाने इसको,
यह जग का सुख जग को दे दे,
अपने को क्या सुख क्या दुख?

१६१८]

अनंग

अहे विश्व अभिनय के नायक !
अखिल सृष्टि के सूत्राधार !
उर उर के कंपन में व्यापक !
ऐ त्रिभुवन के मनोविकार !
ऐ असीम सौन्दर्य सिंधु की
विपुल वीचियों के शृङ्गार !
मेरे मानस की तरंग में
पुनः अनंग ! बनो साकार।

(आदि काल में बाल प्रकृति जब
थी प्रसुप्त, मृतवत, हतज्ञान,
शस्य शून्य वसुधा का अंचल,
निश्चल जलनिधि, रवि शशि म्लान;)
प्रथम हास से, प्रथम अश्रु से,
प्रथम पुलक से, हे छविमान !
स्मृति से, विस्मय से तुम सहसा
विश्व स्वप्न से खिले अजान।

फूल जगत के उर कंपन में,
पुलकावलि में हँस अविराम,

मृदुल कल्पनाओं से पोषित,
भावों से भूषित अभिराम;
तुमने भौंरों की गुंजित ज्या,
कुसुमों का लीलायुध थाम,
अखिल भुवन के रोम रोम में,
केशर शर भर दिए सकाम।

नव वसंत के सरस स्पर्श से
पुलकित वसुधा बारंबार
सिहर उठी स्मित शस्यावलि में,
विकसित चिर यौवन के भार;
फूट पड़ा कलिका के उर से
सहसा सौरभ का उद्गार,
गंध मुग्ध हो अंध समीरण
लगा थिरकने विविध प्रकार।

अगणित बाहें बढ़ा उदधि ने
इंदु करों से आलिङ्गन
बदले, विपुल चटुल लहरों ने
तारों से फेनिल चुंबन;
अपनी ही छवि से विस्मित हो
जगती के अपलक लोचन
सुमनों के पलकों पर सुख से
करने लगे सलिल मोचन।

सौ सौ साँसों में पत्रों की
उमड़ी हिमजल सस्मित भोर,
मूक विहग कुल के कंठों से
उठी मधुर संगीत हिलोर;
विश्व विभव सी बाल उषा की
उड़ा सुनहली अंचल छोर,
शत हर्षित ध्वनियों से आहत
बढ़ा गंधवह नभ की ओर।

शून्य शिराओं में संसृति की
हुआ विचारों का संचार,
नारी के गंभीर हृदय का
गूढ़ रहस्य बना साकार;
मिला लालिमा में लज्जा की
छिपा एक निर्मल संसार,
नयनों में निःसीम व्योम औ'
उरोरुहों में सुरसरि धार।

अंबुधि के जल में अथाह छवि,
अंबर में उज्वल आह्लाद,
ज्योत्स्ना में अपनी अजानता,
मेघों में उदार संवाद;
विपुल कल्पनाएँ लहरों में,
तरु छाया में विरह विषाद,

मिली तृषा सरिता की गति में,
तम में अगम, गहन उन्माद!
मृगियों ने चंचल अवलोकन,
औ' चकोर ने निशाभिसार,
सारस ने मृदु ग्रीवालिङ्गन,
हंसों ने गति, वारि विहार;
पावस लास प्रमत्त शिखी ने,
प्रमदा ने सेवा, शृङ्गार,
स्वाति तृषा सीखी चातक ने,
मधुकर ने मादक गुंजार।

शून्य वेणु उर से तुम कितनी
छेड़ चुके तब से प्रिय तान,
यमुना की नीली लहरों में
बहा चुके कितने कल गान;
कहाँ मेघ औ' हंस? किंतु तुम
भेज चुके संदेश अजान,
तुड़ा मरालों से मंदर धनु
जुड़ा चुके तुम अगणित प्राण!
जीवन के सुख दुख से सुरभित
कितने काव्य कुसुम सुकुमार,
करुण कथाओं की मृदु कलियाँ—
मानव उर के से शृङ्गार—

कितने छंदों से, तालों से,
कितने रागों से अविकार
फूट रहे नित, अहे विश्वमय!
तव से जगती के उद्गार!

विपुल कल्पना से, भावों से,
खोल हृदय के सौ सौ द्वार,
जल,थल,अनिल,अनल, नभ से कर
जीवन को फिर एकाकार;
विश्व मंच पर हास अश्रु का
अभिनय दिखला बारंबार,
मोह यवनिका हटा, कर दिया
विश्व रूप तुमने साकार।

हे त्रिलोकजित! नव वसंत की
विकच पुष्प शोभा सुकुमार
सहस, तुम्हारे मृदुल करों में
झुकी धनुष सी है साभार;
वीर! तुम्हारी चितवन चंचल
विजय ध्वजा में मीनाकार
कामिनि की अनिमेष नयन छवि
करती नित नव बल संचार।
बजा दीर्घ साँसें को भेरी,
सजा सटे कुच कलशाकार,

पलक पाँवड़े बिछा, खड़े कर
रोओं में पुलकित प्रतिहार;
बाल युवतियाँ तान कान तक
चल चितवन के बंदनवार,
देव ! तुम्हारा स्वागत करतीं
खोल सतत उत्सुक दृग द्वार।

ऐ त्रिनयन की नयन वह्नि के
तप्त स्वर्ण ! ऋषियों के गान !
नग्न जीवन ! षड्ऋतु परिवर्तन !
नव रसमय ! जगती के प्राण !
ऐ असीम सौन्दर्य राशि में
हृत्कंपन के अंतर्धान !
विश्व कामिनी की पावन छवि
मुझे दिखाओ, करुणावान !

Poet looks at the world with this view.

सितम्बर, १६२३]

नारी रूप

घने लहरे रेशम के बाल,—
धरा है सिर में मैंने देवि !
तुम्हारा यह स्वर्गिक श्रृंगार,
स्वर्ण का सुरभित भार !

मलिन्दों से उलझी गुंजार,
मृणालों से मृदु तार;
मेघ से संध्या का संसार,
वारि से ऊर्मि उभार;
—मिले हैं इन्हें विविध उपहार
तरुण तम से विस्तार।

तुम्हारे रोम रोम से नारि !
मुझे है स्नेह अपार;
तुम्हारा मृदु उर ही सुकुमारि !
मुझे है स्वर्गागार।

तुम्हारे गुण हैं मेरे गान,
मृदुल दुर्बलता, ध्यान;
तुम्हारी पावनता अभिमान,
शक्ति, पूजन सम्मान;

अकेली सुंदरता कल्याणि !
सकल ऐश्वर्यों की संधान।

तुम्हीं हो स्पृहा, अश्रु औ' हास,
सृष्टि के उर की साँस;
तुम्हीं इच्छाओं की अवसान,
तुम्हीं स्वर्गिक आभास;
तुम्हारी सेवा में अनजान
हृदय है मेरा अंतर्धान;
देवि ! मा ! सहचरि ! प्राण !

मई, १९२२]

मुसकान

कहेंगे क्या मुझसे सब लोग
कभी आता है इसका ध्यान !
रोकने पर भी तो सखि ! हाय,
नहीं रुकती है यह मुसकान !

विपिन में पावस के से दीप
सुकोमल, सहसा, सौ सौ भाव
सजग हो उठते हैं उर बीच,
नहीं रख सकती तनिक दुराव !
कल्पना के ये शिशु नादान
हँसा देते हैं मुझे निदान !
तारकों से पलकों पर कूद
नींद हर लेते नव नव भाव,
कभी बन हिमजल की लघु बूँद
बढ़ाते मुझसे चिर अपनाव;
गुदगुदाते ये तन, मन, प्राण,
नहीं रुकती तब यह मुसकान !

कभी उड़ते पत्तों के साथ
मुझे मिलते मेरे सुकुमार,

बढ़ाकर लहरों से निज हाथ
बुलाते, फिर, मुझको उस पार;
नहीं रखती मैं जग का ज्ञान,
और हँस पड़ती हूँ अनजान !
रोकने पर भी तो सखि ! हाय,
नहीं रुकती तब यह मुसकान !

अगस्त, १९२२]

खद्योत

अँधियाली घाटी में सहसा
हरित स्फुलिङ्ग सदृश फूटा वह !
वह उड़ता दीपक निशीथ का,—
तारा सा आकर टूटा वह !
जीवन के घन अंधकार में
मानव आत्मा का प्रकाश कण
जग सहसा, ज्योतित कर देता
मानव के चिर गुह्य कुंज वन !

मई, १९३५]

जुगनू

जगमग जगमग, हम जग का मग,
ज्योतित प्रति पग करते जगमग।
हम ज्योति शलभ, हम कोमल प्रभ,
हम सहज सुलभ दीपों के नभ!

चंचल, चंचल, बुझ बुझ, जल जल,
शिशु उर पल पल हरते छल छल!
हम पटु नभचर, हँसमुख सुंदर,
स्वप्नों को हर लाते भू पर?

झिलमिल, झिलमिल स्वप्निल, तंद्रिल,
आभा हिलमिल भरते झिलमिल!

परिवर्तन

कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल ?
भूतियों का दिगंत छवि जाल,
ज्योति चुंबित जगती का भाल ?
राशि राशि विकसित वसुधा का वह यौवन विस्तार ?
स्वर्ग की सुखमा जब साभार
धरा पर करती थी अभिसार !
प्रसूनों के शाश्वत शृंगार,
(स्वर्ण भृंगों के गंध विहार)
गूँज उठते थे बारंबार,
सृष्टि के प्रथमोद्‌गार !
नग्न सुंदरता थी सुकुमार,
ऋद्धि औ' सिद्धि अपार !
अये, विश्व का स्वर्ण स्वप्न, संसृति का प्रथम प्रभात,
कहाँ वह सत्य, वेद विख्यात ?
दुरित, दुख, दैन्य न थे जब ज्ञात,
अपरिचित जरा मरण भ्रू पात !

(२)

हाय ! सब मिथ्या बात !—
आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी साँस !

वही मधुऋतु की गुंजित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार,
अकिंचनता में निज तत्काल
सिहर उठती,—जीवन है भार !

आज पावस नद के उद्गार
काल के बनते चिह्न कराल;
प्रात का सोने का संसार
जला देती संध्या की ज्वाल !

अखिल यौवन के रंग उभार
हड्डियों के हिलते कंकाल;
कचों के चिकने, काले व्याल
केंचुली, काँस, सिवार;
गूँजते हैं सबके दिन चार,
सभी फिर हाहाकार !

(३)

आज बचपन का कोमल गात
जरा का पीला पात !
चार दिन सुखद चाँदनी रात,
और फिर अंधकार, अज्ञात !

शिशिर सा झर नयनों का नीर
झुलस देता गालों के फूल !

प्रणय का चुम्बन छोड़ अधीर
अधर जाते अधरों को भूल!

मृदुल होंठों का हिमजल हास
उड़ा जाता निःश्वास समीर,
सरल भौंहों का शरदाकाश
घेर लेते घन, घिर गंभीर!

शून्य साँसों का विधुर वियोग
छुड़ाता अधर मधुर संयोग;
मिलन के पल केवल, दो-चार,
विरह के कल्प अपार!

अरे, वे अपलक चार नयन
आठ आँसू रोते निरुपाय;
उठे रोओं के आलिङ्गन
कसक उठते काँटों से हाय!

(४)

किसी को सोने के सुख साज
मिल गए यदि ऋण भी कुछ आज;
चुका लेता दुख कल ही ब्याज,
काल को नहीं किसी की लाज!
विपुल मणि रत्नों का छवि जाल,
इन्द्रधनु की सी छटा विशाल—

विभव की विद्युत ज्वाल
चमक, छिप जाती है तत्काल;
मोतियों जड़ी ओस की डार
हिला जाता चुपचाप बयार!

(५)

खोलता इधर जन्म लोचन,
मूँदती उधर मृत्यु क्षण क्षण;
अभी उत्सव औ' हास हुलास,
अभी अवसाद, अश्रु, उच्छ्वास!
अचिरता देख जगत की आप
शून्य भरता समीर निःश्वास,
डालता पातों पर चुपचाप
ओस के आँसू नीलाकाश;
सिसक उठता समुद्र का मन,
सिहर उठते उड़गन!

(६)

अहे निष्ठुर परिवर्तन!
तुम्हारा ही तांडव नर्तन
विश्व का करुण विवर्तन!
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन,
निखिल उत्थान, पतन!
अहे वासुकि सहस्र फन!

लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरंतर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षःस्थल पर !
शत शत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर !
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पांतर,
अखिल विश्व ही विवर,
वक्र कुंडल
दिङ्मंडल !

(७)

अहे दुर्जेय विश्वजित् !
नवाते शत सुरवर, नरनाथ
तुम्हारे इंद्रासन तल माथ;
घूमते शत शत भाग्य अनाथ,
सतत रथ के चक्रों के साथ !

तुम नृशंस नृप से जगती पर चढ़ अनियंत्रित;
करते हो संसृति को उत्पीड़ित, पद मर्दित,
नग्न नगर कर, भग्न भवन, प्रतिमाएँ खंडित,
हर लेते हो विभव, कला, कौशल चिर संचित !
आधि, व्याधि, बहु वृष्टि, वात, उत्पात, अमंगल,
वह्नि, बाढ़, भूकंप,—तुम्हारे विपुल सैन्य दल;
अहे निरंकुश ! पदाघात से जिनके विह्वल

हिल हिल उठता है टल मल
पद दलित धरा तल!

(८)

जगत का अविरत हृत्कंपन
तुम्हारा ही भय सूचन;
निखिल पलकों का मौन पतन
तुम्हारा ही आमंत्रण!

विपुल वासना विकच विश्व का मानस शतदल
छान रहे तुम, कुटिल काल कृमि से घुस पल पल;
तुम्हीं स्वेद सिंचित संसृति के स्वर्ण शस्य दल
दलमल देते, वर्षोपल बन, वांछित कृषिफल!
अये, सतत ध्वनि स्पंदित जगती का दिङ्मंडल
नैश गगन सा सकल
तुम्हारा ही समाधि स्थल!

(९)

काल का अकरुण भृकुटि विलास
तुम्हारा ही परिहास;
विश्व का अश्रु पूर्ण इतिहास!
तुम्हारा ही इतिहास!

एक कठोर कटाक्ष तुम्हारा अखिल प्रलयकर
समर छेड़ देता निसर्ग संसृति में निर्भर!

भूमि चूम जाते अभ्रध्वज सौध, शृंगवर,
नष्ट भ्रष्ट साम्राज्य—भूति के मेघाडंबर !
अये, एक रोमांच तुम्हारा दिग्भूकंपन,
गिर गिर पड़ते भीत पक्षि पोतों से उड़गन !
आलोड़ित अंबुधि फेनोन्नत कर शत शत फन,
मुग्ध भुजंगम सा, इंगित पर करता नर्तन !
दिक् पिंजर में बद्ध, गजाधिप सा विनतानन,
वाताहत हो गगन
आर्त करता गुरु गर्जन !

(१०)

जगत की शत कातर चीत्कार
बेधतीं बधिर ! तुम्हारे कान !
अश्रु स्रोतों की अगणित धार
सींचतीं उर पाषाण !
अरे क्षण क्षण सौ सौ निःश्वास
छा रहे जगती का आकाश !
चतुर्दिक् घहर घहर आक्रांति
ग्रस्त करती सुख शांति !

(११)

हाय री दुर्बल भ्रांति !—
कहाँ नश्वर जगती में शांति !
सृष्टि ही का तात्पर्य अशांति !

जगत अविरत जीवन संग्राम,
स्वप्न है यहाँ विराम!
एक सौ वर्ष, नगर उपवन,
एक सौ वर्ष, विजन वन!
—यही तो है असार संसार,
सृजन, सिंचन, संहार!
आज गर्वोन्नत हर्म्य अपार,
रत्न दीपावलि, मंत्रोच्चार;
उलूकों के कल भग्न विहार,
झिल्लियों की झनकार!
दिवस निशि का यह विश्व विशाल
मेघ मारुत का माया जाल!

(१२)

अरे, देखो इस पार—
दिवस की आभा में साकार
दिगंबर, सहम रहा संसार!
हाय! जग के करतार!!

प्रात ही तो कहलाई मात,
पयोधर बने उरोज उदार,
मधुर उर इच्छा को अज्ञात
प्रथम ही मिला मृदुल आकार;

छिन गया हाय ! गोद का बाल,
गड़ी है बिना बाल की नाल !
अभी तो मुकुट बँधा था माथ,
हुए कल ही हलदी के हाथ;
खुले भी न थे लाज के बोल,
खिले भी चुम्बन शून्य कपोल;
हाय ! रुक गया यहीं संसार
बना सिन्दूर अँगार !
वात हत लतिका वह सुकुमार
पड़ी है छिन्नाधार !!

(१३)

काँपता उधर दैन्य निरुपाय,
रज्जु सा, छिद्रों का कृश काय !
न उर में गृह का तनिक दुलार,
उदर ही में दानों का भार !
भूँकता खिड़ी शिशिर का श्वान
चीरता हरे ! अचीर शरीर;
न अधरों में स्वर, तन में प्राण,
न नयनों ही में नीर !

(१४)

सकल रोओं से हाथ पसार
लूटता इधर लोभ गृह द्वार;

उधर वामन डग स्वेच्छाचार
नापता जगती का विस्तार;
टिड्डियों सा छा अत्याचार
चाट जाता संसार!

(१५)

बजा लोहे के दंत कठोर
नचाती हिंसा जिह्वा लोल;
भृकुटि के कुंडल वक्र मरोर
फुहुँकता अंध रोष फन खोल!
लालची गीधों से दिनरात,
नोचते रोग शोक नित गात,
अस्थि पंजर का दैत्य दुकाल
निगल जाता निज बाल!

(१६)

बहा नर शोणित मूसलधार,
रुंड मुंडों की कर बौछार,
प्रलय घन सा घिर भीमाकार
गरजता है दिगंत संहार;
छेड़ खर शस्त्रों की झंकार
महाभारत गाता संसार!
कोटि मनुजों के, निहत अकाल,
नयन मणियों से जटित कराल

अरे, दिग्गज सिंहासन जाल
अखिल मृत देशों के कंकाल;
मोतियों के तारक लड़ हार
आँसुओं के शृंगार!

(१७)

रुधिर के हैं जगती के प्रात,
चितानल के ये सायंकाल;
शून्य निःश्वासों के आकाश,
आँसुओं के ये सिन्धु विशाल;
यहाँ सुख सरसों, शोक सुमेरु,
अरे, जग है जग का कंकाल!!
वृथा रे; ये अरण्य चीत्कार,
शांति, सुख है उस पार!

(१८)

आह भीषण उद्‌गार!—
नित्य का यह अनित्य नर्तन,
विवर्तन जग, जग व्यावर्तन,
अचिर में चिर का अन्वेषण
विश्व का तत्त्वपूर्ण दर्शन!
अतल से एक अकूल उमंग,
सृष्टि की उठती तरल तरंग,

उमड़ शत शत बुद्बुद् संसार
बूड़ जाते निस्सार !
बना सैकत के तट अतिवात
गिरा देती अज्ञात !

(१९)

एक छवि के असंख्य उड़गन,
एक ही सब में स्पंदन;
एक छवि के विभात में लीन,
एक विधि के आधीन !
एक ही लोल लहर के छोर
उभय सुख दुख, निशि भोर;
इन्हीं से पूर्ण त्रिगुण संसार,
सृजन ही है, संहार !
मूँदती नयन मृत्यु की रात
खोलती नव जीवन की प्रात,
शिशिर की सर्व प्रलयकर वात
बीज बोती अज्ञात !
म्लान कुसुमों की मृदु मुसकान
फलों में फलती फिर अम्लान,
महत् है, अरे, आत्म बलिदान,
जगत केवल आदान प्रदान !

(२०)

वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप
हृदय में बनता प्रणय अपार;
लोचनों में लावण्य अनूप,
लोक सेवा में शिव अविकार;
स्वरों में ध्वनित मधुर, सुकुमार
सत्य ही प्रेमोद्गार;
दिव्य सौन्दर्य, स्नेह साकार,
भावनामय संसार !

(२१)

स्वीय कर्मों ही के अनुसार
एक गुण फलता विविध प्रकार;
कहीं राखी बनता सुकुमार,
कहीं बेड़ी का भार !

(२२)

कामनाओं के विविध प्रहार
छेड़ जगती के उर के तार,
जगाते जीवन की झंकार
स्फूर्ति करते संचार,

चूम सुख दुख के पुलिन अपार
छलकती ज्ञानामृत की धार!

पिघल होंठों का हिलता हास
दृगों को देता जीवन दान,
वेदना ही में तपकर प्राण
दमक, दिखलाते स्वर्ण हुलास!

तरसते हैं हम आठों याम,
इसी से सुख अति सरस, प्रकाम;
झेलते निशि दिन का संग्राम
इसी से जय अभिराम;
अलभ है इष्ट, अतः अनमोल,
साधना ही जीवन का मोल!

(२३)

बिना दुख के सब सुख निस्सार,
बिना आँसू के जीवन भार;
दीन दुर्बल है रे संसार,
इसी से दया, क्षमा औ' प्यार!

(२४)

आज का दुख, कल का आह्लाद,
और कल का सुख, आज विषाद;

समस्या स्वप्न गूढ़ संसार
पूर्ति जिसकी उस पार;
जगत जीवन का अर्थ विकास,
मृत्यु, गति क्रम का ह्रास!

(२५)

हमारे काम न अपने काम,
नहीं हम, जो हम ज्ञात;
अरे, निज छाया में उपनाम
छिपे हैं हम अपरूप;
गँवाने आए हैं अज्ञात
गँवा कर पाते स्वीय स्वरूप!

(२६)

जगत की सुंदरता का चाँद
सजा लांछन को भी अवदात,
सुहाता बदल, बदल, दिनरात,
नवलता ही जग का आह्लाद!

(२७)

स्वर्ण शैशव स्वप्नों का जाल,
मंजरित यौवन, सरस रसाल;
प्रौढ़ता, छाया वट सुविशाल;
स्थविरता, नीरव सायंकाल;

वही विस्मय का शिशु नादान
रूप पर मँडरा, बन गुंजार;
प्रणय से बिंध, बँध, चुन चुन सार,
मधुर जीवन का मधु कर पान;
साध अपना मधुमय संसार
डुबा देता निज तन, मन, प्राण!
एक बचपन ही में अनजान
जागते, सोते, हम दिनरात;
वृद्ध बालक फिर एक प्रभात
देखता नव्य स्वप्न अज्ञात;
मूँद प्राचीन मरन,
खोल नूतन जीवन!

(२८)

विश्वमय हे परिवर्तन
अतल से उमड़ अकूल, अपार,
मेघ से विपुलाकार;
दिशावधि में पल विविध प्रकार
अतल में मिलते तुम अविकार!

अहे अनिर्वचनीय! रूप धर भव्य, भयंकर,
इंद्रजाल सा तुम अनंत में रचते सुंदर;
गरज गरज, हँस हँस, चढ़ गिर, छा ढा, भू अंबर,
करते जगती को अजस्र जीवन से उर्वर;

अखिल विश्व की आशाओं का इंद्रचाप वर
अहे तुम्हारी भीम भृकुटि पर
अटका निर्भर !

(२९)

एक औ' बहु के बीच अजान
घूमते तुम नित चक्र समान,
जगत के उर में छोड़ महान
गहन चिह्नों में ज्ञान !
परिवर्तित कर अगणित नूतन दृश्य निरंतर,
अभिनय करते विश्व मंच पर तुम मायाकर !
जहाँ हास के अधर, अश्रु के नयन करुणतर
पाठ सीखते संकेतों में प्रकट, अगोचर;
शिक्षास्थल यह विश्व मंच, तुम नायक नटवर,
प्रकृति नर्तकी सुघर
अखिल में व्याप्त सूत्रधर

(३०)

हमारे निज सुख, दुख, निःश्वास
तुम्हें केवल परिहास;
तुम्हारी ही विधि पर विश्वास
हमारा चिर आश्वास !
ऐ अनंत हृत्कंप ! तुम्हारा अविरत स्पंदन
सृष्टि शिराओं में संचारित करता जीवन;

खोल जगत के शत शत नक्षत्रों से लोचन,
भेदन करते अंधकार तुम जग का क्षण क्षण,
सत्य तुम्हारी राज यष्टि, सम्मुख नत त्रिभुवन,
भूप, अकिंचन,
अटल शास्ति नित करते पालन!

(३१)

तुम्हारा ही अशेष व्यापार,
हमारा भ्रम, मिथ्याहंकार,
तुम्हीं में निराकार साकार,
मृत्यु जीवन सब एकाकार!
अहे महांबुधि! लहरों से शत लोक, चराचर,
क्रीड़ा करते सतत तुम्हारे स्फीत वक्ष पर,
तुंग तरंगों से शत युग, शत शत कल्पांतर
उगल, महोदर में विलीन करते तुम सत्वर;
शत सहस्र रवि शशि, असंख्य ग्रह, उपग्रह, उड़गण,
जलते, बुझते हैं स्फुलिंग से तुम में तत्क्षण,
अचिर विश्व में अखिल—दिशावधि, कर्म, वचन, मन,
तुम्हीं चिरंतन
अहे विवर्तन हीन विवर्तन!

एप्रिल, १९२४]

सौर मंडल

चिन्मय प्रकाश से विश्व उदय,
चिन्मय प्रकाश में विकसित, लय!
रवि, शशि, ग्रह उपग्रह तारा चय,
अग जग प्रकाशमय हैं निश्चय!
चित् शक्ति एक रे जगज्जननि,
धृत ज्योति योनि में लोकाशय,
पलते उर में नव जगत सतत,
होते जग जीर्ण उदर में क्षय।
चिर महानंद के पुलकों से
झर झर नित अगणित लोक निचय,
नाचते शून्य में समुल्लसित
बन शत शत सौर चक्र निर्भय!
अविराम प्रेम परिणय अग जग,
परिणीत उभय चिन्मय मृन्मय,
जड़ चेतन, चेतन जड़ बन बन
रचते चिर सृजन प्रलय अभिनय!
उन्मुक्त प्रेम की बाँहों में
सुख दुख, सदसत् होते तन्मय,
वह विश्वात्मा रे अग जग का
वह अखिल चराचर का समुदय!

प्रलय गीत

डम डम डम डमरू स्वर,
रुद्र नृत्य प्रलयंकर !
कंपित दिग्भू अंबर,
ध्वस्त अहंमद डंबर !

क्रूर, शूर, खर, दुर्धर,
अंध तमस पुत्र अमर,
नित्य सर्व शिव अनुचर
भव भय तम भ्रम जित्वर !

हम अभाव जनित, अपर,
हमसे सत् चित् अक्षर,
नाम रूप गुण अंतर
तम प्रकाश रूपांतर ।

झंझा हर जीर्ण पत्र
बोता नव बीज निकर,
पाता नित सद् विकास,
होता लय तम कट मर !

प्रथम रश्मि

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि !
तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ, कहाँ हे बाल विहंगिनि !
पाया तूने यह गाना ?

सोई थी तू स्वप्न नीड़ में
पंखों के सुख में छिपकर,
झूम रहे थे, घूम द्वार पर,
प्रहरी से जुगनू नाना;
शशि किरणों से उतर उतर कर
भू पर कामरूप नभचर
चूम नवल कलियों का मृदु मुख
सिखा रहे थे मुसकाना;

स्नेह हीन तारों के दीपक,
श्वास शून्य थे तरु के पात,
विचर रहे थे स्वप्न अवनि में,
तम ने था मंडप ताना;
कूक उठी सहसा तरु वासिनि !
गा तू स्वागत का गाना,
किसने तुझको अंतर्यामिनि !
बतलाया उसका आना ?

निकल सृष्टि के अंध गर्भ से
छाया तन बहु छाया हीन,
चक्र रच रहे थे खल निशिचर
चला कुहुक, टोना माना;

छिपा रही थी मुख शशि बाला
निशि के श्रम से हो श्री हीन,
कमल क्रोड़ में बंदी था अलि,
कोक शोक से दीवाना;

मूर्छित थीं इंद्रियाँ, स्तब्ध जग,
जड़ चेतन सब एकाकार,
शून्य विश्व के उर में केवल
साँसों का आना जाना;

तूने ही पहले बहु दर्शिनि!
गाया जागृति का गाना,
श्रीसुख सौरभ का नभ चारिणि!
गूँथ दिया ताना बाना!

निराकार तम मानो सहसा
ज्योति पुंज में हो साकार,
बदल गया द्रुत जगत जाल में
धर कर नाम रूप नाना;

सिहर उठे पुलकित हो द्रुम दल,
सुप्त समीरण हुआ अधीर,
झलका हास कुसुम अधरों पर
हिल मोती का सा दाना;

खुले पलक, फैली सुवर्ण छवि,
जगी सुरभि, डोले मधु बाल,
स्पन्दन कम्पन औ' नव जीवन
सीखा जग ने अपनाना;

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि !
तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ, कहाँ हे बाल विहंगिनि !
पाया यह स्वर्गिक गाना ?

१६१६]

उषा वंदना

तुम नील वृन्त के नभ के जग,
ऊषे ! गुलाब सी खिल आईं !
अलसाई आँखों में भर कर
जग के प्रभात की अरुणाई !

लिपटी तुम तरुण अरुण उर से
लज्जा लाली की सी झाईं !
भू पर उस स्नेह मधुरिमा की
पड़ती सखि, कोमल परछाईं !

तुम जग की स्वप्न शिराओं में
नव जीवन रुधिर सदृश छाईं,
मानस में सोई, भावों की
लो, अखिल कमल कलि मुसकाईं !
आशाऽकांक्षा के कुसुमों से
जीवन की डाली भर लाईं,
जग के प्रदीप में जीवन की
लौ सी उठ, नव छवि फैलाईं !

सोने का गान

कहो हे प्रमुदित विहग कुमारि !
कहाँ से आया यह प्रिय गान ?
तुहिन वन में छाई सुकुमारि !
तुम्हारी स्वर्ण ज्वाल सी तान !

उषा की कनक मदिर मुसकान
उसी में था क्या अनजान ?
भला उठते ही तुमको आज
दिलाया किसने इसका ध्यान !

स्वर्ण पंखों को विहग कुमारि !
अमर है यह पुलकों का गान !
विटप में थी तुम छिपी विहान,
विकल क्यों हुए अचानक प्राण ?

छिपाओ अब न रहस्य कुमारि !
लगा यह किसका कोमल बाण ?
विजन वन में तुमने सुकुमारि !
कहाँ पाया यह मेरा गान ?

स्वप्न में आकर कौन सुजान
फूँक सा गया तुम्हारे कान ?

कनक कर बढ़ा बँढ़ा कर प्रांत
कराया किसने यह मधु पान ?
मुझे लौटा दो, विहग कुमारि !
सजल मेरा सोने का गान।

मार्च, १६२२]

विहग बाला के प्रति

अँगड़ाते तम में

अलसित पलकों से स्वर्ण स्वप्न नित
सजनि! देखती हो तुम विस्मित,
नव, अलभ्य, अज्ञात!

आओ, सुकुमारि विहग बाले!
अपने कलरव ही से कोमल
मेरे मधुर गान में अविकल
सुमुखि! देख लो दिव्य स्वप्न सा
जग का नव्य प्रभात!

है स्वर्ण नीड़ मेरा भी जग उपवन में,
मैं खग सा फिरता नीरव भाव गगन में;
उड़ मृदुल कल्पना पंखों में, निर्जन में,
चुगता हूँ गाने बिखरे तृन में, कन में!
कल कंठिनि! निज कलरव में भर,
अपने कवि के गीत मनोहर
फैला आओ वन वन, घर घर,
नाचें तृण, तरु, पात!

१९१९]

विहग गीत

आओ, जीवन के आतप में
हम सब हिल मिल खेलें जी भर,
गई रात, त्यागो जड़ निद्रा,
खुला ज्योति का छत्र गगन पर!

चहकें जुट जग के आँगन में
हो निज लघु नीड़ों से बाहर,
एक गान हो यह जग जीवन,
हम उसके सौ सौ सुखमय स्वर।

सुख से रे रस लें, जीवन फल
छेद प्रेम की चंचु से प्रखर,
डाल डाल हो क्रीड़ा कलरव,
शाख शाख हो इस जग की, घर!

मुक्त गगन है जग जीवन का,
उड़ें खोल इच्छाओं के पर,
हो अपार उड़ने की इच्छा,
है असीम यह जग का अंबर!

संध्या तारा

नीरव संध्या में प्रशांत
डूबा है सारा ग्राम प्रांत।
पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर,
ज्यों वीणा के तारों में स्वर
खग कूजन भी हो रहा लीन, निर्जन गोपथ अब धूलि हीन,
धूसर भुजंग सा जिह्म, क्षीण।
झींगुर के स्वर का प्रखर तीर, केवल प्रशांति को रहा चीर,
संध्या प्रशांति को कर गभीर।
इस महाशांति का उर उदार, चिर आकांक्षा की तीक्ष्ण धार
ज्यों बेध रही हो आर पार।

अब हुआ सांध्य स्वर्णाभ लीन,
सब वर्ण वस्तु से विश्व हीन।
गंगा के चल जल में निर्मल, कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल
है मूँद चुका अपने मृदु दल।
लहरों पर स्वर्ण रेख सुंदर पड़ गई नील, ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर।
तरु शिखरों से वह स्वर्ण विहग उड़ गया, खोल निज पंख सुभग,
किस गुहा नीड़ में रे किस मग !
मृदु मृदु स्वप्नों से भर अंचल, नव नील नील, कोमल कोमल,
छाया तरु वन में तम श्यामल।

पश्चिम नभ में हूँ रहा देख
उज्वल, अमंद नक्षत्र एक !
अकलुष, अनिन्द्य नक्षत्र एक ज्यों मूर्तिमान ज्योतित विवेक,
उर में हो दीपित अमर टेक।
किस स्वर्णाकांक्षा का प्रदीप वह लिए हुए किसके समीप ?
मुक्तालोकित ज्यों रजत सीप !
क्या उसकी आत्मा का चिर धन, स्थिर, अपलक नयनों का चिन्तन,
क्या खोज रहा वह अपनापन !
दुर्लभ रे दुर्लभ अपनापन, लगता यह निखिल विश्व निर्जन,
वह निष्फल इच्छा से निर्धन !

आकांक्षा का उच्छ्वसित वेग
मानता नहीं बंधन विवेक !
चिर आकांक्षा से ही थर् थर्, उद्वेलित रे अहरह सागर,
नाचती लहर पर हहर लहर !
अविरत इच्छा ही में नर्तन करते अबाध रवि, शशि उड़गण,
दुस्तर आकांक्षा का बंधन !
रे उडु, क्या जलते प्राण विकल ! क्या नीरव नीरव नयन सजल !
जीवन निसंग रे व्यर्थ विफल !
एकाकीपन का अंधकार, दुस्सह है इसका मूक भार,
इसके विषाद का रे न पार !

... ...

चिर अविचल पर तारक अमंद !
जानता नहीं वह छंद बंध !
वह रे अनंत का मुक्त मीन अपने असंग सुख में विलीन,
स्थित निज स्वरूप में चिर नवीन।
निष्कंप शिखा सा वह निरुपम, भेदता जगत जीवन का तम,
वह शुद्ध, प्रबुद्ध, शुक्र, वह सम !

... ...

गुञ्जित अलि सा निर्जन अपार, मधुमय लगता घन अंधकार,
हलका एकाकी व्यथा भार !
जगमग जगमग नभ का आँगन लद गया कुंद कलियों से घन,
वह आत्म और यह जग दर्शन !

जनवरी, १९३२]

शुक्र !

द्वाभा के एकाकी प्रेमी,
नीरव दिगंत के शब्द मौन,
रवि के जाते, स्थल पर आते
कहते तुम तम से चमक—'कौन ?'
संध्या के सोने के नभ पर
तुम उज्वल हीरक सदृश जड़े,
उदयाचल पर दीखते प्रात
अंगूठे के बल हुए खड़े !
अब सूनी दिशि औ' श्रांत वायु,
कुम्हलाई पंकज कली सृष्टि;
तुम डाल विश्व पर करुण प्रभा
अविराम कर रहे प्रेम वृष्टि !
ओ छोटे शशि, चाँदी के उडु !
जब जब फैले तम का विनाश,
तुम दिव्य दूत से उतर शीघ्र
बरसाओ निज स्वर्गिक प्रकाश !

संध्या

कौन, तुम रूपसि कौन!

व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया छवि में आप,
सुनहला फैला केश कलाप,—
मधुर, मंथर, मृदु, मौन!

मूँद अधरों में मधुपालाप,
पलक में निमिष, पदों में चाप,
भाव संकुल, बंकिम, भ्रू चाप,
मौन केवल तुम मौन!

ग्रीव तिर्यक्, चम्पक द्युति गात,
नयन मुकुलित, नत मुख जलजात,
देह छवि छाया में दिन रात,
कहाँ रहतीं तुम कौन!

अनिल पुलकित स्वर्णांचल लोल;
मधुर नूपुर ध्वनि खग कुल रोल,
सीप-से जलदों के पर खोल,
उड़ रहीं नभ में मौन!

लाज से अरुण अरुण सुकपोल,
मदिर अधरों की सुरा अमोल,—
बने पावस घन स्वर्ण हिंदोल,
कहो, एकाकिनि, कौन ?
मधुर मंथर तुम मौन !

सितम्बर '३०]

सांध्य वंदना

जीवन का श्रम ताप हरो, हे!
सुख सुखमा के मधुर स्वर्ण से
सूने जग गृह द्वार भरो, हे!
जीवन का श्रम ताप हरो, हे!

लौटे गृह सब श्रांत चराचर,
नीरव तरु अधरों पर मर्मर,
करुणानत निज कर पल्लव से
विश्व नीड़ प्रच्छाय करो, हे!
जीवन का श्रम ताप हरो, हे!

उदित शुक्र, अब अस्त भानु बल,
स्तब्ध पवन, नत नयन पद्म दल,
तंद्रिल पलकों में निशि के शशि!
सुखद स्वप्न बन कर विचरो, हे!
जीवन का श्रम ताप हरो, हे!

चाँदनी

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारद हासिनि,
मृदु करतल पर शशि मुख धर,
नीरव, अनिमिष, एकाकिनि !

वह स्वप्न जड़ित नत चितवन
छू लेती अग जग का मन,
श्यामल, कोमल, चल चितवन
लहरा देती जग जीवन !

वह बेला की फूली बन
जिसमें न नाल, दल, कुड्मल;
केवल विकास चिर निर्मल
जिसमें डूबे दश दिशि दल।

वह सोई सरित पुलिन पर
साँसों में स्तब्ध समीरण,
केवल लघु लघु लहरों पर
मिलता मृदु मृदु उर स्पंदन।

अपनी छाया में छिप कर
वह खड़ी शिखर पर सुंदर,

लो नाच रहीं शत शत छवि
सागर की लहर लहर पर।
दिन की आभा दुलहिन बन
आई निशि निभृत शयन पर,
वह छवि की छुईमुई सी
मृदु मधुर लाज से मर मर।

जग के अस्फुट स्वप्नों का
वह हार गूँथती प्रतिपल;
चिर सजल सजल, करुणा से
उसके ओसों का अंचल।

वह मृदु मुकुलों के मुख में
भरती मोती के चुंबन,
लहरों के चल करतल में
चाँदी के चंचल उडगण।

वह परिमल के लघु घन सी
जो लीन अनिल में अविकल,
सुख के उमड़े सागर सी
जिसमें निमग्न तट के स्थल।

वह स्वप्निल शयन मुकुल सी
हैं मुँदे दिवस के द्युति दल,
उर में सोया जग का अलि,
नीरव जीवन गुंजन कल।

वह एक बूँद जीवन की
नभ के विशाल करतल पर;
डूबें असीम सुखमा में
सब ओर छोर के अंतर।

वह शशि किरणों से उतरी
चुपके मेरे आँगन पर,
उर की आभा में खोई,
अपनी ही छवि से सुंदर।

वह खड़ी दृगों के सम्मुख
सब रूप, रेख, रँग ओझल;
अनुभूति मात्र सी उर में,
आभास शांत, शुचि, उज्वल!

वह है, वह नहीं, अनिर्वच',
जग उसमें, वह जग में लय;
साकार चेतना सी वह,
जिसमें अचेत जीवाशय!

फरवरी, १९३२]

चाँदनी

जग के दुख दैन्य शयन पर
यह रुग्णा जीवन बाला
रे कब से जाग रही, वह
आँसू की नीरव माला!
पीली पड़, दुर्बल, कोमल,
कृश देह लता कुम्हलाई;
विवसना, लाज में लिपटी,
साँसों में शून्य समाई!
रे म्लान अंग, रँग, यौवन!
चिर मूक, सजल नत चितवन!
जग के दुख से जर्जर उर,
बस मृत्यु शेष अब जीवन!!
वह स्वर्ण भोर को ठहरी
जग के ज्योतित आँगन पर,
तापसी विश्व की बाला
पाने नव जीवन का वर!

फरवरी, १९३२]

ज्योत्स्ना स्तुति

तुम चंद्र वदनि, तुम कुंद दशनि,
तुम शशि प्रेयसि, प्रिय परछाईं।

नभ की नव रँग सीपी से तुम
मुक्ताभा सदृश उमड़ आईं।

उर में अविकच स्वप्नों का युग,
मन की छवि तन से छन छाई।

श्री, सुख सुखमा की कलि चुन चुन
जग के हित अंचल भर लाईं।

मिलन

जब मिलते मौन नयन पल भर,
खिल खिल अपलक कलियाँ निर्भर
देखतीं मुग्ध, विस्मित, नभ पर! जब०

तुम मदिराधर पर मधुर अधर
धरते, झरते हिमकण झर् झर्,
मोती के चुंबन से चूकर
मृदु मुकुलों के सस्मित मुख पर। जब०

तुम आलिंगन करते, हिमकर!
नाचतीं हिलोरें सिहर सिहर,
सौ सौ बाँहों में बाँहें भर
सर में, आकुल, उठ उठ, गिरकर। जब०

जब रहस मिलन होता सुखकर,
स्वर्गिक सुख स्वप्नों से सुन्दर
भर जाता स्नेहातुर होकर,
अग जग का विरह विधुर अंतर। जब०

नौका विहार

शांत, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्वल !
अपलक अनंत, नीरव भूतल !
सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल,
लेटी हैं श्रांत, क्लांत, निश्चल !
तापस बाला गंगा निर्मल, शशि मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरे उर पर कोमल कुंतल।
गोरे अंगों पर सिहर सिहर, लहराता तार तरल सुन्दर
चंचल अंचल सा नीलांबर।
साड़ी की सिकुड़न सी जिसपर, शशि की रेशमी विभा से भर,
सिमटी हैं वर्तुल, मृदुल लहर।

चाँदनी रात का प्रथम प्रहर,
हम चले नाव लेकर सत्वर।
सिकता की सस्मित सीपी पर मोती की ज्योत्स्ना रही विचर,
लो, पालें बँधीं, खुला लंगर।
मृदु मंद, मंद, मंथर, मंथर, लघु तरणि, हंसिनी सी सुन्दर,
तिर रही, खोल पालों के पर।
निश्चल जल के शुचि दर्पण पर, बिम्बित हो रजत पुलिन निर्भर,
दुहरे ऊँचे लगते क्षण भर।

कालाकाँकर का राजभवन, सोया जल में निश्चिन्त, प्रमन,
पलकों में वैभव स्वप्न सघन।

नौका से उठतीं जल हिलोर,
हिल पड़ते नभ के ओर छोर।
विस्फारित नयनों से निश्चल, कुछ खोज रहे चल तारक दल,
ज्योतित कर जल का अंतस्तल;
जिनके लघु दीपों को चंचल, अंचल की ओट किए अविरल,
फिरतीं लहरें लुक छिप पल पल।
सामने शुक्र की छवि झलमल, पैरती परी सी जल में कल,
रुपहरे कचों में हो ओझल।
लहरों के घूँघट से झुक-झुक, दशमी का शशि निज तिर्यक् मुख
दिखलाता, मुग्धा सा रुक रुक।
अब पहुँची चपला बीच धार,
छिप गया चाँदनी का कगार।
दो बाँहों से दूरस्थ तीर, धारा का कृश कोमल शरीर,
आलिंगन करने को अधीर।
अति दूर, क्षितिज पर विटप माल, लगती भ्रू रेखा सी अराल,
अपलक नभ नील नयन विशाल;
मा के उर पर शिशु सा, समीप, सोया धारा में एक द्वीप,
ऊर्मिल प्रवाह को कर प्रतीप;
वह कौन विहग? क्या विकल कोक, उड़ता, हरने निज विरह शोक?
छाया की कोकी को विलोक।

पतवार घुमा, अब प्रतनु भार
नौका घूमी विपरीत धार।
डाँड़ों के चल करतल पसार, भर भर मुक्ताफल फेन स्फार,
बिखराती जल में तार हार।
चाँदी के साँपों सी रलमल नाचतीं रश्मियाँ जल में चल,
रेखाओं सी खिंच तरल सरल।
लहरों की लतिकाओं में खिल, सौ सौ शशि, सौ सौ उडु झिलमिल,
फैले फूले जल में फेनिल।
अब उथला सरिता का प्रवाह, लग्गी से ले ले सहज थाह,
हम बढ़े घाट को सहोत्साह।

ज्यों ज्यों लगती है नाव पार
उर में आलोकित शत विचार।
इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम,
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम।
शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत हास,
शाश्वत लघु लहरों का विलास।
हे जग जीवन के कर्णधार! चिर जन्म मरण के आर पार,
शाश्वत जीवन-नौका विहार।
मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण,
करता मुझको अमरत्व दान।

मार्च, १९३२]

वीचि विलास

अरी सलिल की लोल हिलोर !
यह कैसा स्वर्गीय हुलास ?
सरिता की चंचल दृग कोर !
यह जग को अविदित उल्लास ?

आ, मेरे मृदु अंग झकोर,
नयनों को निज छवि में बोर,
मेरे उर में भर मधु रोर !

गूढ़ साँस सी गति यति हीन
अपनी ही कंपन में लीन,
सजल कल्पना सी साकार
पुनः पुनः प्रिय, पुनः नवीन;

तुम शैशव स्मिति सी सुकुमार,
मर्म रहित, पर मधुर अपार,
खिल पड़ती हो बिना विचार !
वारि बेलि सी फैल अमूल,
छा अपत्र सरिता के कूल,

विकसा औ' सकुचा नवजात
बिना नाल के फेनिल फूल;

छुईमुई सी तुम पश्चात्
छूकर अपना ही मृदु गात,
मुरझा जाती हो अज्ञात।

स्वर्ण स्वप्न सी कर अभिसार
जल के पलकों पर सुकुमार,
फूट आप ही आप अजान
मधुर वेणु की सी झंकार;

तुम इच्छाओं सी असमान,
छोड़ चिह्न उर में गतिवान,
हो जाती हो अंतर्धान।

मुग्धा की सी मृदु मुसकान
खिलते ही लज्जा से म्लान;
स्वर्गिक सुख की सी आभास
अतिशयता में अचिर, महान—

दिव्य भूति सी आ तुम पास,
कर जाती हो क्षणिक विलास,
आकुल उर को दे आश्वास।

ताल ताल में थिरक अमंद,
सौ सौ छंदों में स्वच्छंद
गाती हो निस्तल के गान,
सिन्धु गिरा सी अगम, अनंत;

इंदु करों से लिख अम्लान
तारों के रोचक आख्यान,
अंबर के रहस्य द्युतिमान।

चला मीन दृग चारों ओर,
गह गह चंचल अंचल छोर,
रुचिर रुपहरे पंख पसार
अरी वारि की परी किशोर !

तुम जल थल में अनिलाकार
अपनी ही लघिमा पर वार,
करती हो बहु रूप विहार।

अंग भंगि में व्योम मरोर,
भौंहों में तारों के भौंर
नचा, नाचती हो भरपूर
तुम किरणों की बना हिंडोर;

निज अधरों पर कोमल क्रूर,
शशि से दीपित प्रणय कपूर
चाँदी का चुंबन कर चूर।

खेल मिचौनी सी निशि भोर,
कुटिल काल का भी चित चोर,
जन्म मरण से कर परिहास,
बढ़ असीम की ओर अछोर;

तुम फिर फिर सुधि सी सोच्छ्वास
जी उठती हो बिना प्रयास,
ज्वाला सी, पाकर वातास।

मई, १९२३]

हिलोरों का गीत

अपने ही सुख से चिर चंचल
हम खिल खिल पड़ती हैं प्रतिपल !
जीवन के फेनिल मोती को
ले ले चल करतल में टलमल !

छू-छू मधु-मलयानिल रह रह
करता प्राणों को पुलकाकुल
जीवन की लतिका में लहलह
विकसा इच्छा के नव नव दल !

सुन मधुर मरुत मुरली की ध्वनि
गृह पुलिन नाँघ, सुख से विह्वल,
हम हुलस नृत्य करतीं हिल मिल,
खस खस पड़ता उर से अंचल !

चिर जन्म मरण को हँस हँसकर
हम आलिंगन करतीं पल पल,
फिर फिर असीम से उठ उठ कर
फिर फिर उसमें हो हो ओझल !

झकोरों का गीत

हम चिर अदृश्य नभचर सुंदर
अपनी लघिमा पर न्योछावर।
शोभित मृदु वाष्प-वसन तन पर,
रवि शशि किरणों से सस्मित पर!

अधरों में भर अस्फुट मर्मर,
साँसों से पी सौरभ सुखकर
फिरते हम दिशि दिशि निशि वासर
चढ़ चित्रग्रीव चल जलदों पर।

खिल पड़ते चपल परस पाकर
पुलकित हो तृण तरुदल सत्वर,
नाचतीं संग विवसना लहर
बाँहों में कोमल बाहें भर!

हिलोर और झकोर

लहर—हम कोमल सलिल हिलोर नवल,
झकोर—हम अस्थिर मरुत झकोर चपल !
लहर—हम मुग्धा नव यौवन चंचल,
झकोर—हम तरुण, मिलन इच्छा विह्वल !

लहर—हम लाज भीरु, खुल पड़ता तन,
झकोर—सुन्दर तन का सौंदर्य वसन !
लहर—श्लथ हुए अंग सब सिहर सिहर,
झकोर—आकुल उर काँप रहा थर् थर् !

लहर—हम तन्वि, भार यह नव यौवन,
झकोर—नवला का आश्रय आलिंगन !
लहर—हम जल अप्सरि,
झकोर—हम वर नभचर,
दोनों—है प्रेम पाश स्वर्गीय, अमर !

विश्व वेणु

हम मारुत के मधुर झकोर,
नील व्योम के अंचल छोर;
बाल कल्पना से अनजान
फिरते रहते हैं निशि भोर;
उर उर के प्रिय, जग के प्राण।

चारु नभचरों से वय हीन
अपनी ही मृदु छवि में लीन,
कर सहसा शीतल भ्रू पात,
चंचलपन में ही आसीन,
हम पुलकित कर देते गात।

गुंजित कुंजों में सुकुमार
(भौंरों के सुरभित अभिसार)
आ, जा, खोल, फेर, स्वच्छंद
पत्रों के बहु छिद्रित द्वार,
हम क्रीड़ा करते सानंद।

चूम मौन कलियों का मान,
खिला मलिन मुख में मुसकान,

गूढ़ स्नेह का सा निःश्वास
पा कुसुमों से सौरभ दान,
रँग देते रज से आकाश।

छेड़ वेणु वन में आलाप,
जगा रेणु के लोड़ित साँप;
भय से पीले तरु के पात
भगा बावलों से बेआप,
करते नित नाना उत्पात।

अस्थि हीन जलदों के बाल
खींच, मींच औ' फेंक, उछाल,
रचते विविध मनोहर रूप
मार, जिला उनको तत्काल,
फैला माया जाल अनूप।

हर सुदूर से अस्फुट तान,
आकुल कर पथिकों के कान,
विश्व वेणु के से झंकार
हम जग के सुख दुखमय गान
पहुँचाते अनन्त के द्वार।

मार्च, १९२३]

पवन गीत

सर् सर् मर् मर् झन् झन् सन् सन्—
गाता कभी गरजता भीषण,
वन वन, उपवन,
पवन, प्रभंजन।

मेरी चपल अँगुलियों पर चल
लोल लहरियाँ करतीं नर्तन,
अधर अधर पर धर चल चुंबन,
बाँह बाँह में भर आलिंगन। सर् सर्०

मेरा चाबुक खा, मृगेन्द्र-सा
आहत घन करता गुरु गर्जन,
अट्टहास कर, विद्युत् पर चढ़,
जब मैं नभ में करता विचरण। सर् सर्०

चारवायु

प्राण ! तुम लघु लघु गात !
नील नभ के निकुंज में लीन,
नित्य नीरव, निःसंग नवीन,
निखिल छवि की छवि ! तुम छवि हीन,
अप्सरी सी अज्ञात !

अधर मर्मर युत, पुलकित अंग,
चूमतीं चल पद चपल तरंग,
चटकतीं कलियाँ पा भ्रूभंग,
थिरकते तृण, तरु पात ।

हरित द्युति चंचल अंचल छोर,
सजल छवि, नील कंचु, तन गौर,
चूर्ण कच, साँस सुगंध झकोर,
परों में सायं प्रात !

विश्व हृत शतदल निभृत निवास,
अहर्निश साँस साँस में लास,
अखिल जग जीवन हास विलास,
अदृश्य, अस्पृश्य, अजात !

निर्झरी

यह कैसा जीवन का गान
अलि ! कोमल कल् मल् टल् मल् ?
अरी शैलबाले नादान !
यह निश्छल कल् कल् छल् छल् ?

झर् मर् कर पत्रों के पास,
रण मण रोड़ों पर सायास,
हँस हँस सिकता से परिहास
करतीं तुम अविरल झलमल ।

स्वर्ण बेलि सी खिली विहान,
निशि में तारों की सी यान;
रजत तार सी शुचि रुचिमान
फिरतीं तुम रंगिणि ! रल् मल ।

दिखा भंगिमय भृकुटि विलास,
उपलों पर बहु रंगी लास,
फैलाती हो फेनिल हास,
फूलों के कूलों पर चल ।

अलि ! यह क्या केवल दिखलाव,
मूक व्यथा का मुखर भुलाव ?

अथवा जीवन का बहलाव ?
सजल आँसुओं की अंचल !

वही कल्पना है दिन रात,
बचपन औ' यौवन की बात;
सुख की वा दुख की ? अज्ञात !
उर अधरों पर है निर्मल।

सरल सलिल की सी कल तान,
निखिल विश्व से निपट अजान,
विपिन रहस्यों की आख्यान !
गूढ़ बात है कुछ टल् मल् !

सितम्बर, १९२२]

अप्सरा

निखिल कल्पनामयि अयि अप्सरि !
अखिल विस्मयाकार !
अकथ, अलौकिक, अमर, अगोचर
भावों की आधार !
गूढ़, निरर्थ असंभव, अस्फुट
भेदों की शृंगार !
मोहिनि, कुहकिनि, छल विभ्रममयि,
चित्र विचित्र अपार !

शैशव की तुम परिचित सहचरि,
जग से चिर अनजान
नव शिशु के सँग छिप छिप रहतीं
तुम, मा का अनुमान;
डाल अँगूठा शिशु के मुँह में
देतीं मधु स्तन दान,
छिपी थपक से उसे सुलातीं,
गा गा नीरव गान।

तंद्रा के छाया पथ से आ
शिशु उर में सविलास,

अधरों के अस्फुट मुकुलों में
रँगती स्वप्निल हास;
दंत कथाओं से अबोध शिशु
सुन' विचित्र इतिहास
नव नयनों में नित्य तुम्हारा
रचते रूपाभास।

प्रथम रूप मदिरा से उन्मद
यौवन में उद्दाम
प्रेयसि के प्रत्यंग अंग से
लिपटीं तुम अभिराम,
युवती के उर में रहस्य बन,
हरतीं मन प्रतियाम,
मृदुल पुलक मुकुलों से लद कर
देह लता छवि धाम।

इंद्रलोक में पुलक नृत्य तुम
करतीं लघु पद भार!
तड़ित चकित चितवन से चंचल
कर सुर सभा अपार,
नग्न देह में नव रँग सुर धनु
छाया पट सुकुमार,
खोंस नील नभ की वेणी में
इंदु कुंद द्युति स्फार।

स्वर्गंगा में जल विहार तुम
करतीं, बाहु मृणाल!
पकड़ पैरते इंदु बिम्ब के
शत शत रजत मराल;
उड़ उड़ नभ में शुभ्र फेन कण
बन जाते उडु बाल,
सजल देह द्युति चल लहरों में
बिम्बित सरसिज माल।

रवि छवि चुंबित चल जलदों पर
तुम नभ में, उस पार,
लगा अंक से तड़ित भीत शशि—
मृग शिशु को सुकुमार,
छोड़ गगन में चंचल उडुगण
चरण चिह्न लघु भार,
नाग दंत नत इंद्रधनुष पुल
करती हो नित पार।

कभी स्वर्ग की थीं तुम अप्सरि,
अब वसुधा की बाल,
जग के शैशव के विस्मय से
अपलक पलक प्रवाल!
बाल युवतियों की सरसी में
चुगा मनोज्ञ मराल,

सिखलातीं मृदु रोमहास तुम
चितवन कला अराल।

तुम्हें खोजते छाया वन में
अब भी कवि विख्यात,
जब जग जग निशि प्रहरी जुगनू
सो जाते चिर प्रात,
सिहर लहर, मर्मर कर तरुवर,
तपक तड़ित अज्ञात,
अब भी चुपके इंगित देते
गूँज मधुप, कवि भ्रात।

गौर श्याम तन, बैठ प्रभा तम,
भगिनी भ्रात सजात,
बुनते मृदुल मसृण छायांचल
तुम्हें तन्वि! दिनरात;
स्वर्ण सूत्र में रजत हिलोरें
कंचु काढ़तीं प्रात,
सुरँग रेशमी पंख तितलियाँ
डुला सिरातीं गात।

तुहिन बिन्दु में इंदु रश्मि सी
सोईं तुम चुपचाप,
मुकुल शयन में स्वप्न देखतीं
निज निरुपम छवि आप;

चटुल लहरियों से चल चुंबित
मलय मृदुल पद चाप,
जलजों में निद्रित मधुपों से
करतीं मौनालाप।

नील रेशमी तम का कोमल
खोल लोल कच भार,
तार तरल लहरा लहरांचल,
स्वप्न-विकच स्तन हार;
शशि कर सी लघु पद, सरसी में
करतीं तुम अभिसार,
दुग्ध फेन शारद ज्योत्स्ना में
ज्योत्स्ना सी सुकुमार।

मेंहदी युत मृदु करतल छवि से
कुसुमित सुभग 'सिंगार,
गौर देह द्युति हिम शिखरों पर
बरस रही साभार;
पद लालिमा उषा, पुलकित पर
शशि-स्मित घन सोभार;
उडु कंपन मृदु मृदु उर स्पंदन,
चपल वीचि पद चार।

शत भावों के विकच दलों से
मंडित, एक प्रभात

खिलीं प्रथम सौंदर्य पद्म सी
तुम जग में नवजात;
भृंगों से अगणित रवि, शशि, ग्रह
गूँज उठे अज्ञात,
जगज्जलधि हिल्लोल विलोड़ित,
गंध अंध दिशि वात।

जगती के अनिमिष पलकों पर
स्वर्णिम स्वप्न समान,
उदित हुई थीं तुम अनंत
यौवन में चिर अम्लान;
चंचल अंचल में फहरा कर
भावी स्वर्ण विहान,
स्मित आनन में नव प्रकाश से
दीपित नव दिनमान।

सखि, मानस के स्वर्ग वास में
चिर सुख में आसीन,
अपनी ही सुखमा में अनुपम,
इच्छा में स्वाधीन,
प्रति युग में आती हो रंगिणि!
रच रच रूप नवीन,
तुम सुर-नर-मुनि-ईप्सित अप्सरि!
त्रिभुवन भर में लीन।

अंग अंग अभिनव शोभा का
नव वसंत सुकुमार,
भृकुटि भंग नव नव इच्छा के
भृंगों का गुंजार;
शत शत मधु आकांक्षाओं से
स्पंदित पृथु उर भार,
नव आशा के मृदु मुकुलों से
चुंबित लघु पदचार।

निखिल विश्व ने निज गौरव
महिमा, सुखमा कर दान,
निज अपलक उर के स्वप्नों से
प्रतिमा कर निर्माण,
पल पल का विस्मय, दिशि दिशि की
प्रतिभा कर परिधान,
तुम्हें कल्पना औ' रहस्य में
छिपा दिया अनजान।

जग के सुख दुख, पाप ताप,
तृष्णा ज्वाला से हीन;
जरा - जन्म - भय - मरण - शून्य,
यौवनमयि, नित्य नवीन;

अतल - विश्व - शोभा - वारिधि में,
मज्जित जीवन मीन,
तुम अदृश्य, अस्पृश्य अप्सरी,
निज सुख में तल्लीन।

फ़रवरी, १६३२]

उच्छ्वास

(सावन भादों)

(सावन)

सिसकते, अस्थिर मानस से
बाल बादल सा उठकर आज
सरल, अस्फुट उच्छ्वास !
अपने छाया के पंखों में
(नीरव घोष भरे शंखों में)
मेरे आँसू गूँथ, फैल गंभीर मेघ सा,
आच्छादित कर ले सारा आकाश !

मंद, विद्युत सा हँसकर,
वज्र सा उर में धँसकर
गरज, गगन के गान ! गरज गंभीर स्वरों में,
भर अपना संदेश उरों में, औ' अधरों में;
बरस धरा में, बरस सरित, गिरि, सर, सागर में;
हर मेरा संताप, पाप जग का क्षणभर में।

हृदय के सुरभित साँस !
जरा है आदरणीय;
सुखद यौवन ? विलास उपवन रमणीय;

शैशव ही है एक स्नेह की वस्तु, सरल, कमनीय;
—बालिका ही थी वह भी।
सरलपन ही था उसका मन,
निरालापन था आभूषन,
कान से मिले अजान नयन,
सहज था सजा सजीला तन।

रँगीले, गीले फूलों-से
अधखिले भावों से प्रमुदित
बाल्य सरिता के कूलों से
खेलती थी तरंग सी नित।
—इसी में था असीम अवसित!

मधुरिमा के मधुमास!
मेरा मधुकर का सा जीवन,
कठिन कर्म है, कोमल है मन;
विपुल मृदुल सुमनों से सुरभित,
विकसित है विस्तृत जग उपवन!

यही हैं मेरे तन, मन, प्राण,
यही हैं ध्यान, यही अभिमान;
धूलि की ढेरी में अनजान
छिपे हैं मेरे मधुमय गान!
कुटिल काँटे हैं कहीं कठोर,

जटिल तरु जाल घिरे चहुँ ओर,
सुमन दल चुन चुन कर निशि भोर
खोजना है अजान वह छोर!
—नवल कलिका थी वह।

उसके उस सरलपने से
मैंने था हृदय सजाया,
नित मधुर मधुर गीतों से
उसका उर था उकसाया।

कह उसे कल्पनाओं की
कल कल्पलता, अपनाया;
बहु नवल भावनाओं का
उसमें पराग था पाया।

मैं मंद हास सा उसके
मृदु अधरों पर मँडराया;
औ' उसकी सुखद सुरभि से
प्रतिदिन समीप खिंच आया।

पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश;
पल पल परिवर्तित प्रकृति वेश।
मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग सुमन फाड़,

अवलोक रहा है बार बार
नीचे जल में निज महाकार;
—जिसके चरणों में पला ताल
दर्पण सा फैला है विशाल!

गिरि का गौरव गाकर झर् झर्
मद से नस नस उत्तेजित कर
मोती की लड़ियों से सुंदर
झरते हैं झाग भरे निर्झर।

गिरिवर के उर से उठ उठ कर
उच्चाकांक्षाओं-से तरुवर
हैं झाँक रहे नीरव नभ पर,
अनिमेष, अटल, कुछ चिन्तापर!

—उड़ गया, अचानक, लो, भूधर
फड़का अपार पारद के पर!
रव-शेष रह गए हैं निर्झर!
लो टूट पड़ा भू पर अंबर!

धँस गए धरा में सभय शाल!
उठ रहा धुँआ, जल गया ताल!
—यों जलद यान में विचर, विचर,
था इंद्र खेलता इंद्रजाल!

(वह सरला उस गिरि को कहती थी बादल घर।)

इस तरह मेरे चितेरे हृदय की
वाह्य प्रकृति बनी चमत्कृत चित्र थी;
सरल शैशव की सुखद सुधि सी वही
बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।

(भादों)

दीप के बचे विकास !
अनिल सा लोक लोक में,
हर्ष में, और शोक में,
कहाँ नहीं है प्रेम ? साँस सा सबके उर में !
यही तो है बचपन का हास
खिले यौवन का मधुप विलास,
प्रौढ़ता का वह बुद्धि विकाश
जरा का अंतर्नयन प्रकाश;
जन्मदिन का है यही हुलास,
मृत्यु का यही दीर्घ निःश्वास !
है यह वैदिक वाद;
विश्व का सुख-दुखमय उन्माद !
एकतामय है इसका नादः—
गिरा हो जाती है सनयन,
नयन करते नीरव भाषण;
श्रवण तक आजाता है मन,
स्वयं मन करता बात श्रवण।

अश्रुओं में रहता है हास,
हास में अश्रुकणों का भास;
श्वास में छिपा हुआ उच्छ्वास,
और उच्छ्वासों ही में श्वास !

बँधे हैं जीवन-तार;
सब में छिपी हुई है यह झंकार !
हो जाता संसार
नहीं तो दारुण हाहाकार !

अचल हो उठते हैं चंचल;
चपल बन जाते हैं अविचल;
पिघल पड़ते हैं पाहन दल;
कुलिश भी हो जाता कोमल !

मर्म पीड़ा के हास !
रोग का है उपचार;
पाप का भी परिहार;
है अदेह संदेह, नहीं है इसका कुछ संस्कार !
हृदय की है यह दुर्बल हार !!

खींच लो इसको, कहीं क्या छोर है ?
द्रौपदी का यह दुरंत दुकूल है !
फैलता है हृदय में नभ बेलि सा,
खोज लो, इसका कहीं क्या मूल है ?

यही तो काँटे सा चुपचाप
उगा उस तरुवर में,—सुकुमार
सुमन वह था जिसमें अविकार—
बेध डाला मधुकर निष्पाप !!!
देख हाय ! यह, उर से रह रह निकल रही है आह !
व्यथा का रुकता नहीं प्रवाह !

सिड़ी के गूढ़ हुलास !
बीनते हैं प्रसून दल;
तोड़ते ही हैं मृदु फल;
देखा नहीं किसी को चुनते कोमल कोंपल !!
अभी पल्लवित हुआ था स्नेह,
लाज का भी न गया था राग;
पड़ा पाला सा हा ! संदेह,
कर दिया वह नव राग विराग !
मिले थे मानस नभ अज्ञात,
स्नेह शशि बिम्बित था भरपूर;
अनिल सा कर अकरुण आघात,
प्रेम प्रतिमा कर दी वह चूर !!
बालकों का सा मारा हाथ,
कर दिए विकल हृदय के तार !
नहीं अब रुकती है झंकार,
यही था हा ! क्या एक सितार ?

हुई मरु की मरीचिका आज,
मुझे गंगा की पावन धार!

कहाँ है उत्कंठा का पार!!
इसी वेदना में विलीन हो अब मेरा संसार!
तुम्हें, जो चाहो, है अधिकार!
टूट जा यहीं यह हृदय हार!!!

सितम्बर, १९२२]

आँसू

(भादों की भरन)

(१)

अपलक आँखों में

उमड़ उर के सुरभित उच्छ्वास !
सजल जलधर से बन जलधार;
प्रेममय 'वे प्रिय पावस मास
पुनः नयनों में कर साकार;
मूक कणों की कातर वाणी भर इनमें अविकार,
दिव्य स्वर पा आँसू का तार
बहा दे हृदयोद्गार !

वियोगी होगा पहिला कवि,
आह से उपजा होगा गान;
उमड़ कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान !

× × ×

हाय किसके उर में
उतारूँ अपने उर का भार !

किसे अब दूँ उपहार
गूँथ यह अश्रुकणों का हार!!
मेरा पावस ऋतु सा जीवन,
मानस सा उमड़ा अपार मन;
गहरे धुँधले, धुले, साँवले,
मेघों-से मेरे भरे नयन!

कभी उर में अगणित मृदु भाव
कूजते हैं विहगों-से हाय!
अरुण कलियों-से कोमल घाव
कभी खुल पड़ते हैं असहाय!

इंद्रधनु सा आशा का सेतु
अनिल में अटका कभी अछोर,
कभी कुहरे सी धूमिल, घोर,
दीखती भावी चारों ओर!

तड़ित सा सुमुखि! तुम्हारा ध्यान
प्रभा के पलक मार, उर चीर,
गूढ़ गर्जन कर जब गंभीर
मुझे करता है अधिक अधीर,
जुगनुओं-से उड़ मेरे प्राण
खोजते हैं तब तुम्हें निदान!

× × ×

देखता हूँ, जब उपवन
पियालों में फूलों के
प्रिये ! भर भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर को;
नवोढ़ा बाल लहर
अचानक उपकूलों के
प्रसूनों के ढिंग रुक कर
सरकती है सत्वर;

अकेली आकुलता सी, प्राण !
कहीं तब करती मृदु आघात,
सिहर उठता कृश गात,
ठहर जाते हैं पग अज्ञात !

देखता हूँ, जब पतला
इन्द्रधनुषी हलका
रेशमी घूँघट बादल का
खोलती है कुमुद कला;

तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान
मुझे करता तब अंतर्धान;
न जाने तुमसे मेरे प्राण
चाहते क्या आदान !

× × ×

बादलों के छायामय मेल
घूमते हैं आँखों में, फैल!
अवनि 'औ' अंबर के वे खेल
शैल में जलद, जलद में शैल!

शिखर पर विचर मरुत रखवाल
वेणु में भरता था जब स्वर,
मेमनों-से मेघों के बाल
कुदकते थे प्रमुदित गिरि पर!

इन्द्रधनु की सुन कर टंकार
उचक चपला के चंचल बाल
दौड़ते थे गिरि के उस पार
देख उड़ते विशिखों की धार!

पपीहों की वह पीन पुकार,
निर्झरों की भारी झर् झर्;
झींगुरों की झीनी झनकार
घनों की गुरु गंभीर घहर;

बिन्दुओं की छनती छनकार,
दादुरों के वे दुहरे स्वर;
हृदय हरते थे विविध प्रकार
शैल पावस के प्रश्नोत्तर!

(२)

करुण है हाय ! प्रणय,
नहीं दुरता है जहाँ दुराव;
करुणतर है वह भय,
चाहता है जो सदा बचाव;
करुणतम भग्न हृदय,
नहीं भरता है जिसका घाव;
करुण अतिशय उनका संशय,
छुड़ाते हैं जो जुड़े स्वभाव !!
किए भी हुआ कहाँ संयोग ?
टला टाले कब इसका वास ?
स्वयं ही तो आया यह पास,
गया भी, बिना प्रयास !

× × ×

हाय ! मेरा जीवन,
प्रेम औ' आँसू के कन !
आह, मेरा अक्षय धन,
अपरिमित सुन्दरता औ' मन !
—एक वीणा की मृदु झंकार !
कहाँ है सुन्दरता का पार !
तुम्हें किस दर्पण में सुकुमारि !
दिखाऊँ मैं साकार ?

तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा स्नान;
तुम्हारी वाणी में कल्याणि!
त्रिवेणी की लहरों का गान!
अपरिचित चितवन में था प्रात,
सुधामय साँसों में उपचार;
तुम्हारी छाया में आधार,
सुखद चेष्टाओं में आभार!

करुण भौंहों में था आकाश,
हास में शैशव का संसार;
तुम्हारी आँखों में कर वास
प्रेम ने पाया था आकार!

कपोलों में उर के मृदु भाव,
श्रवण नयनों में प्रिय बर्ताव;
सरल संकेतों में संकोच,
मृदुल अधरों में मधुर दुराव!
उषा का था उर में आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल विकास;
चाँदनी का स्वभाव में भास
विचारों में बच्चों के साँस!
बिंदु में थीं तुम सिंधु अनंत,
एक स्वर में समस्त संगीत;

एक कलिका में अखिल वसंत,
धरा में थी तुम स्वर्ग पुनीत !

× × ×

सुप्ति हो स्वल्प वियोग
नव मिलन को अनिमेष,
दैव ! जीवन भर का विश्लेष...
मृत्यु ही है निःशेष !!

× × ×

मूँद पलकों में प्रिया के ध्यान को,
थाम ले अब, हृदय ! इस आह्वान को !
त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं
प्रेयसी के शून्य, पावन स्थान को !

दिसम्बर, १९२१]

ग्रंथि

वह मधुर मधुमास था, जब गंध से
मुग्ध होकर झूमते थे मधुप दल;
रसिक पिक से सरस तरुण रसाल थे,
अवनि के सुख बढ़ रहे थे दिवस-से।

जानकर ऋतुराज का नव आगमन
अखिल कोमल कामनाएँ अवनि की
खिल उठी थीं मृदुल सुमनों में कई
सफल होने को अवनि के ईश से।

रुचिरतर निज कनक किरणों को तपन
चरम गिरि को खींचता था कृपण सा,
अरुण आभा में रँगा था वह पतन
रजकणों सी वासनाओं से विपुल।
तरणि के ही संग तरल तरंग से
तरणि डूबी थी हमारी ताल में;
सांध्य निःस्वन-से गहन जल गर्भ में
था हमारा विश्व तन्मय हो गया।

बुद्बुदे जिन चञ्चल लहरों में प्रथम
गा रहे थे राग जीवन का अचिर,

अल्प पल, उनके प्रबल उत्थान में
हृदय की लहरें हमारी सो गईं।

× × ×

जब विमूर्छित नींद से मैं था जगा
(कौन जाने, किस तरह ?) पीयूष सा
एक कोमल समव्यथित निःश्वास था
पुनर्जीवन सा मुझे तब दे रहा।
शीश रख मेरा सुकोमल जाँघ पर,
शशि कला सी एक बाला व्यग्र हो
देखती थी म्लान मुख मेरा, अचल,
सदय, भीरु, अधीर, चिंतित दृष्टि से।

इंदु पर, उस इंदु मुख पर, साथ ही
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से,
लाज से रक्तिम हुए थे;—पूर्व को
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था!
बाल रजनी सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के वदन के बीच में,
अचल, रेखांकित कभी थी कर रही
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में।

(एक पल, मेरे प्रिया के दृग पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे,

चपलता ने इस विकंपित पुलक से
दृढ़ किया मानो प्रणय संबंध था।
लाज की मादक सुरा सी लालिमा
फैल गालों में, नवीन गुलाब-से,
छलकती थी बाढ़ सी सौन्दर्य की
अधखुले सस्मित गढ़ों से, सीप-से
(इन गढ़ों में—रूप के आवर्त-से—
घूम फिर कर, नाव-से किसके नयन
हैं नहीं डूबे, भटक कर, अटक कर,
भार से दब कर तरुण सौन्दर्य के ?)
सुभग लगता है गुलाब सहज सदा,
क्या उषामय का पुनः कहना भला ?
लालिमा ही से नहीं क्या टपकती
सेब की चिर सरसता, सुकुमारता ?)
पद नखों को गिन, समय के भार को
जो घटाती थी भुलाकर, अवनितल
खुरच कर, वह जड़ पलों की धृष्टता
थी वहाँ मानो छिपाना चाहती।

× × ×

इंदु की छवि में, तिमिर के गर्भ में,
अनिल की ध्वनि में, सलिल की वीचि में,

एक उत्सुकता विचरती थी, सरल
सुमन की स्मिति में, लता के अधर में।
निज पलक, मेरी विकलता, साथ ही
अवनि से, उर से, मृगेक्षिणि ने उठा,
एक पल, निज स्नेह श्यामल दृष्टि से
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप सी।
प्रथम केवल मोतियों को हंस जो
तरसता था, अब उसे तर सलिल में
कमलिनी के साथ क्रीड़ा की सुखद
लालसा पल पल विकल थी कर रही।
रसिक वाचक! कामनाओं के चपल,
समुत्सुक, व्याकुल पगों से प्रेम की
कृपण वीथी में विचर कर, कुशल से
कौन लौटा है हृदय को साथ ला?

× × ×

हाँ, तरणि थी मग्न जब मेरी हुई
(सरस मोती के लिए ही?) उस समय
छलकता था वक्ष मेरा स्फीति से,
मुग्ध विस्मय से, अतृप्त भुलाव से।
बाल्य की विस्मयभरी आँखें, मृदुल
कल्पना की कृश लटों में उलझ के

रूप की सुकुमार कलिका के निकट
झूम, मँडराने लगी थीं घूम कर।
चपल पलकों में छिपे सौन्दर्य के
सहज दब कर, हृदय मादकता मिली
गुदगुदी के स्निग्ध पुलकित स्पर्श को
समुत्सुक होने लगा था प्रतिदिवस।

दृष्टिपथ में दूर अस्फुट प्यास सी
खेलती थी एक रजत मरीचिका,
शरद के बिखरे सुनहले जलद सी
बदलती थी रूप आशा निरंतर।
अह, सुरा का बुलबुला यौवन, धवल
चंद्रिका के अधर पर अटका हुआ,
हृदय को किस सूक्ष्मता के छोर तक
जलद सा है सहज ले जाता उड़ा!

× × ×

हाय! मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रंथि बंधन हो गया, वह नव कमल
मधुप सा मेरा हृदय लेकर, किसी
अन्य मानस का विभूषण हो गया!
पाणि! कोमल पाणि! निज बंधूक की
मृदु हथेली में सरल मेरा हृदय

भूल से यदि ले लिया था, तो मुझे
क्यों न वह लौटा दिया तुमने पुनः ?

प्रणय की पतली अँगुलियाँ क्या किसी
गान से विधि ने गढ़ीं ? जो हृदय को,
याद आते ही, विकल संगीत में
बदल देती हैं भुलाकर, मुग्ध कर !
याद है मुझको अभी वह जड़ समय
व्याह के दिन जब विकल दुर्बल हृदय
अश्रुओं से तारकों को विजन में
गिन रहा था, व्यस्त हो, उद्भ्रांत हो !
हाय रे मानव हृदय ! तुझसे जहाँ
वज्र भी भयभीत होता है, वहीं
देख तेरी मृदुलता तिल सुमन भी
संकुचित हो, सहम जाता है सदा !
ग्रंथि बंधन !—इस सुनहली ग्रंथि में
स्वर्ग की औ' विश्व की मंगलमयी
जो अनोखी चाह, जो उन्मत्त धन
है छिपा, वह एक है, अनमोल है !

शैवलिनि ! जाओ, मिलो तुम सिंधु से,
अनिल ! आलिंगन करो तुम गगन को,
चंद्रिके ! चूमो तरंगों के अधर,
उड़गणो ! गाओ, पवन वीणा बजा !

पर, हृदय ! सब भाँति तू कंगाल है,
उठ, किसी निर्जन विपिन में बैठकर
अश्रुओं की बाढ़ में अपनी बिकी
भग्न भावी को डुबा दे आँख-सी !
देख रोता है चकोर इधर, वहाँ
तरसता है तृषित चातक वारि को,
वह, मधुप बिंध कर तड़पता है, यही
नियम है संसार का, रो हृदय, रो !

× × ×

छिः सरल सौन्दर्य ! तुम सचमुच बड़े
निठुर औ' नादान हो ! सुकुमार, यों
पलक दल में, तारकों में, अधर में
खेल कर तुम कर रहे हो हाय ! क्या ?
जानते हो क्या ? सुकोमल गाल पर
कृश अँगुलियों पर, कटी कटि पर छिपे,
तुम मिचौनी खेल कर कितना गहन
घाव करते हो सुमन-से हृदय में !

औ' अकेले चिबुक तिल से, कुछ उठी
कुछ गिरी भ्रू वीचि से, कुछ कुछ खुली
नयनता से, कुछ रुकी मुसकान से
छीनते किस भाँति हो तुम धैर्य को ?

मुकुल के भीतर उषा की रश्मि से
जन्म पा, मधु की मधुरता, धूलि की
मृदुलता, कटु कंटकों की प्रखरता,
मुग्धता ली मधुप की तुमने चुरा।

और, भोले प्रेम! क्या तुम हो बने
वेदना के विकल हाथों से? जहाँ
झूमते गज-से विचरते हो, वहीं
आह है, उन्माद है, उत्ताप है!
पर नहीं, तुम चपल हो, अज्ञान हो,
हृदय है, मस्तिष्क रखते हो नहीं,
बस, बिना सोचे, हृदय को छीन कर,
सौंप देते हो अपरिचित हाथ में!

स्मृति! यदपि तुम प्रणय की पद चिह्न हो,
पर निरी हो बालिका—तुम हृदय को
गुदगुदाती हो, तरल जल बिम्ब सी
तैरती हो, बाल क्रीड़ा कर सदा।
नियति! तुम निर्दोष और अछूत हो,
सहज हो सुकुमार, चकई का तुम्हें
खेल अति प्रिय है, सतत कृश सूत्र से
तुम फिराती हो जगत को समय सा!

मंजु छाया के विपिन में पूर्णिमा
सजल पत्रों से टपकती है जहाँ,
विचरती हो, वेश प्रतिपल बदल कर,
सुघर मोती-से पदों से ओस के।
(अमृत आशा! चिर दुखी की सहचरी
नित नई मिति सी, मनोरम रूप सी,
विभव वंचित, तृषित, लालायित नयन
देखते हैं सदय मुख तेरा सदा।/

देवि! ऊषा के खिले उद्यान में
सुरभि वेणी में भ्रमर को गूँथ कर,
रेणु की साड़ी पहन, औ' तुहिन का
मुकुट रख, तुम खोलती हो मुकुल को!
मेघ-से उन्माद! तुम स्वर्गीय हो,
कुमुद कर से जन्म पा, तुम मधुप के
गीत पीकर मत्त रहते हो सदा,
मौन औ' अनिमेष निर्जन पुष्प-से!

आह!—सूखे आँसुओं की कल्पना,
कोहरे सी मुक्त नभ में भूम कर,
दग्ध उर का भार-हर, तुम जलद सी
बरसती हो स्वच्छ हलकी शांति में!

अश्रु,—हे अनमोल मोती दृष्टि के !
नयन के नादान शिशु ! इस विश्व में
आँख हैं सौन्दर्य जितना देखतीं
प्रतनु ! तुम उससे मनोरम हो कहीं ।

अश्रु !—दिल की गूढ़ कविता के सरल
औ' सलोने भाव ! माला की तरह
विकल पल में पलक जपते हैं तुम्हें,
तुम हृदय के घाव धोते हो सदा
वेदने ! तुम विश्व को कृश दृष्टि हो,
तुम महा संगीत, नीरव हास हो,
है तुम्हारा हृदय माखन का बना,
आँसुओं का खेल भाता है तुम्हें !

वेदना !—कैसा करुण उद्गार है !
वेदना ही है अखिल ब्रह्मांड यह,
तुहिन में, तृण में, उपल में, लहर में,
तारकों में, व्योम में है वेदना !
वेदना !—कितना विशद यह रूप है !
यह अँधेरे हृदय की दीपक शिखा !
रूप की अंतिम छटा ! औ' विश्व की
अगम चरम अवधि, क्षितिज की परिधि सी !

also p. 155

कौन दोषी है ? यही तो न्याय है !
वह मधुप विंध कर तड़पता है, उधर
दग्ध चातक तरसता है,—विश्व का
नियम है यह; रो, अभागे हृदय ! रो !!

× × ×

कौन वह बिछुड़े दिलों की दुर्दशा
पोंछ सकता है ? दृगों की बाढ़ में
विकल, बिखरे, बुदबुदों की बूड़ती
मौन आहें हाय ! कौन समझ सका ?
शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर
विरह !—अहह, कराहते इस शब्द को
किस कुलिश की तीक्ष्ण, चुभती नोक से
निठुर विधि ने अश्रुओं से है लिखा !!

× × ×

प्रेम वंचित को तथा कंगाल को
है कहाँ आश्रय ? विरह की वह्नि में
भस्म होकर हृदय की दुर्बल दशा
हो गई परिणत विरति सी शक्ति में ।
सुहृद्वर ! कंगाल, कृश कंकाल सा,
भैरवी से भी सुरीला है अहा !
किस गहनता के अधर से फूट कर
फैलते हैं शून्य स्वर इसके सदा !

आज मैं कंगाल हूँ— क्या यह प्रथम
आज मैंने ही कहा ? जो हृदय ! तुम
बह रहे हो मुक्त हलके मोद में
भूल कर दुर्दैव के गुरु भार को !
मैं अकेला विपिन में बैठा हुआ
सींचता हूँ विजनता से हृदय को,
और उसकी भेदती कृश दृष्टि से
ढूँढता हूँ विश्व के उन्माद को।

विश्व,—यह कैसी मनोहर भूल है !
मधुर दुर्बलता !—कई छोटी बड़ी
अल्पताएँ जोड़, लीला के लिए,
यह निराला खेल क्या विधि ने रचा ?
कौन सी ऐसी परम वह वस्तु है
भटकते हैं मनुजगण जिसके लिए ?
कौन सा ऐसा चरम सौन्दर्य है
खींचता है जो जगत के हृदय को ?

आह, उस सर्वोच्च पद की कल्पना
विश्व का कैसा उपल उन्माद है !
यह विशाल महत्त्व कितना रिक्त है,
विपुलता कितनी अबल, असहाय है !

कौन सी ऐसी निरापद है दशा
लोग अभ्युत्थान कहते हैं जिसे?
पतन इसमें कौन सा अभिशाप है
जो कँपाता है जगत के धैर्य को?

निपट नग्न निरीहता को छोड़कर
कौन कर सकता मनोरथ पूर्ति है?
कौन अज्ञ दरिद्रता से अधिकतर
शक्तिमय है, श्रेष्ठ है, संपन्न है?
सौख्य? यह तो साधना का शत्रु है,
रिक्त, कुण्ठित क्षीणता है शक्ति की;
हा! अलस के इस अपाहिज स्वाँग में
हो गई क्यों मग्न जग की गहनता!

[ज्ञान? यह इंद्रियों की भ्रांति है,
शून्य जृंभा मात्र निद्रित बुद्धि की;
जुगनुओं की ज्योति से, वन में विजन,
जन्म पीपल के तले इसका हुआ।]
(वेदना ही के सुरीले हाथ से
है बना यह विश्व, इसका परम पद
वेदना ही का मनोहर रूप है,
वेदना ही का स्वतंत्र विनोद है।

P.T.O.

वेदना से भी निरापद क्या कहीं
और कोई शरण है संसार में ?
वेदना से भी अधिक निर्भय तथा
निष्कपट साम्राज्य है क्या स्वर्ग का ?
कर्म के किस जटिल विस्तृत जाल में
है गुँथी ब्रह्मांड की यह कल्पना !
योग बल का अटल आसन है अड़ा
वेदना के किस गहन स्तर में अहा !

आज मैं सब भाँति सुख संपन्न हूँ
वेदना के इस मनोरम विपिन में;
विजन छाया में द्रुमों की, योग सी;
विचरती है आज मेरी वेदना !)
विपुल कुंजों की सघनता में छिपी
ऊँघती है नींद सी मेरी स्पृहा;
ललित लतिका के विकंपित अधर में
काँपती है आज मेरी कल्पना !

ओस जल-से सजल मेरे अश्रु हैं
पलक दल में दूब के बिखरे पड़े !
पवन पीले पात में मेरा विरह
है खिलाता, दलित मुरझे फूल सा !

सुमन दल में फूट, पागल सी, अखिल
प्रणय की स्मृति हँस रही है, मुकुल में
वास है अज्ञात भावी कर रही
आज मेरी द्रौपदी सी परवशा!

गर्व सा गिर उच्च निर्भर स्रोत से
स्वप्न सुख मेरा शिलामय हृदय में
घोष भीषण कर रहा है वज्र सा;
बात सा, भूकम्प सा, उत्पात सा!
तारकों के अचल पलकों से विपुल
मौन विस्मय छीन कर मेरा पतन
निर्निमेष विलोकता है विश्व की
भीरुता को चन्द्रमा की ज्योति में!

तिमिर के अज्ञात अंचल में छिपी
झूमती है भ्रांति मेरी भ्रमर सी,
चंद्रिका की लहर में है खेलती
भग्न आशा आज शत शत खंड हो!
तिमिर!—यह क्या विश्व का उन्माद है,
जो छिपाता है, प्रकृति के रूप को?
या किसी की यह विनोरव आह है
खोजती है जो प्रलय की राह को!

या किसी के प्रेम वंचित पलक की
मूक जड़ता है ? पवन में विचर कर,
पूछती है जो सितारों से सतत—
'प्रिय ! तुम्हारी नींद किसने छीन ली ?'
यह किसी के रुदन का सूखा हुआ
सिन्धु है क्या ? जो दुखों की बाढ़ में
सृष्टि की सत्ता डुबाने के लिए
उमड़ता है एक नीरव लहर में !

आह, यह किसका अँधेरा भाग्य है ?
प्रलय छाया सा, अनंत विषाद सा !
कौन मेरे कल्पना के विपिन में
पागलों सा यह अभय है घूमता ?
हृदय ! यह क्या दग्ध तेरा चित्र है ?
धूम ही है शेष अब जिसमें रहा !
इस पवित्र दुकूल से तू दैव का
वदन ढँकने के लिए क्यों व्यग्र है ?

भावी पत्नी के प्रति

प्रिये, प्राणों की प्राण !
न जाने किस गृह में अनजान
छिपी हो तुम, स्वर्गीय विधान !
नवल कलिकाओं की सी बाण,
बाल रति सी अनुपम, असमान—
न जाने कौन, कहाँ अनजान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

जननि अंचल में झूल सकाल
मृदुल उर कंपन सी वपुमान;
स्नेह सुख में बढ़, सखि ! चिरकाल
दीप की अकलुष शिखा समान;
कौन सा आलय, नगर विशाल
कर रही तुम दीपित, द्युतिमान ?
शलभ चंचल मेरे मन प्राण,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

नवल मधुऋतु निकुंज में प्रात
प्रथम कलिका सी अस्फुट गात,
नील नभ अंतःपुर में, तन्वि !
दूज की कला सदृश नवजात;

मधुरता मृदुता सी तुम, प्राण !
न जिसका स्वाद स्पर्श कुछ ज्ञात;
कल्पना हो, जाने, परिमाण ?
प्रिये, प्राणों की प्राण !

हृदय के पलकों में गति हीन
स्वप्न संसृति सी सुखमाकार;
बाल भावुकता बीच नवीन
परी सी धरती रूप अपार;
झूलती उर में आज, किशोरि !
तुम्हारी मधुर मूर्ति छविमान,
लाज में लिपटी उषा समान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

मुकुल मधुपों का मृदु मधुमास,
स्वर्ण, सुख, श्री, सौरभ का सार,
मनोभावों का मधुर विलास,
विश्व सुखमा ही का संसार
दृगों में छा जाता सोल्लास
व्योम बाला का शरदाकाश;
तुम्हारा आता जब प्रिय ध्यान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

अरुण अधरों की पल्लव प्रात,
मोतियों सा हिलता हिम हास;
इन्द्रधनुषी पट से ढँक गात
बाल विद्युत का पावस लास,
हृदय में खिल उठता तत्काल
अधखिले अंगों का मधुमास,
तुम्हारी छवि का कर अनुमान
प्रिये, प्राणों की प्राण!

खेल सस्मित सखियों के साथ
सरल शैशव सी तुम साकार,
लोल, कोमल लहरों में लीन
लहर ही सी कोमल, लघु भार,
सहज करती होगी, सुकुमारि!
मनोभावों से बाल विहार
हंसिनी सी सर में कल तान,
प्रिये, प्राणों की प्राण!

खोल सौरभ का मृदु कच जाल
सूँघता होगा अनिल समोद,
सीखते होंगे उड़ खग बाल
तुम्हीं से कलरव, केलि विनोद;

चूम लघु पद चंचलता, प्राण !
फूटते होंगे नव जल स्रोत,
मुकुल बनती होगी मुसकान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

मृदूर्मिल सरसी में सुकुमार
अधोमुख अरुण सरोज समान,
मुग्ध कवि के उर के छू तार
प्रणय का सा नव आकुल गान;
तुम्हारे शैशव में, सोभार,
पा रहा होगा यौवन प्राण;
स्वप्न सा, विस्मय सा अम्लान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात !
विकंपित मृदु उर, पुलकित गात,
सशंकित ज्योत्स्ना सी चुपचाप,
जड़ित पद, नमित पलक दृग पात;
पास जब आ न सकोगी, प्राण !
मधुरता में सी मरी अजान,
लाज की छुईमुई सी म्लान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

सुमुखि, वह मधु क्षण! वह मधु बार!
धरोगी कर में कर सुकुमार!
निखिल जब नर नारी संसार
मिलेगा नव सुख से नव बार;
अधर उर से उर अधर समान,
पुलक से पुलक, प्राण से प्राण,
कहेंगे नीरव प्रणयाख्यान,
प्रिये, प्राणों की प्राण!

अरे, चिर गूढ़ प्रणय आख्यान!
जब कि रुक जावेगा अनजान
साँस सा नभ उर में पवमान,
समय निश्चल, दिशि पलक समान;
अवनि पर झुक आवेगा प्राण!
व्योम चिर विस्मृत से म्रियमाण;
नील सरसिज सा हो हो म्लान,
प्रिये, प्राणों की प्राण!

अप्रैल, १९२७]

प्रतीक्षा

कब से विलोकती तुमको
ऊषा आ वातायन से?
संध्या उदास फिर जाती
सूने गृह के आँगन से!
लहरें अधीर सरसी में
तुमको तकतीं उठ उठ कर,
सौरभ-समीर रह जाता
प्रेयसि! ठण्ढी साँसें भर!
हैं मुकुल मुँदे डालों पर,
कोकिल नीरव मधुवन में;
कितने प्राणों के गाने
ठहरे हैं तुमको मन में!
तुम आओगी, आशा में
अपलक हैं निशि के उडुगण!
आओगी, अभिलाषा से
चंचल, चिर नव, जीवन क्षण!

जनवरी, १६३२]

मधुस्मिति

मुसकुरा दी थी क्या तुम प्राण!
मुसकुरा दी थी आज विहान?
आज गृह वन उपवन के पास
लोटता राशि राशि हिम हास,
खिल उठी आँगन में अवदात
कुंद कलियों की कोमल प्रात।
मुसकरा दी थी, बोलो प्राण!
मुसकरा दी थी तुम अनजान?

आज छाया चहुँदिशि चुपचाप
मृदुल मुकुलों का मौनालाप,
रुपहली कलियों से, कुछ लाल,
लद गईं पुलकित पीपल डाल;
और वह पिक की मर्म पुकार
प्रिये! झर झर पड़ती साभार,
लाज से गड़ी न जाओ, प्राण!
मुसकुरा दी क्या आज विहान?

अक्तूबर, १९२७]

मन विहग

तुम्हारी आँखों का आकाश,
सरल आँखों का नीलाकाश—
खो गया मेरा खग अनजान,
मृगेक्षिणि! इनमें खग अज्ञान।

देख इनका चिर करुण प्रकाश,
अरुण कोरों में उषा विलास
खोजने निकला निभृत निवास,
पलक पल्लव प्रच्छाय निवास;
न जाने ले क्या क्या अभिलाष
खो गया बाल विहग नादान!

तुम्हारे नयनों का आकाश
सजल, श्यामल, अकूल आकाश!
गूढ़, नीरव, गंभीर प्रसार,
न गहने को तृण का आधार;
बसाएगा कैसे संसार,
प्राण! इनमें अपना संसार!

न इनका ओर छोर रे पार,
खो गया वह नव पथिक अजान!

अक्तूबर, १९२७]

प्रेम नीड़

नवल मेरे जीवन की डाल
बन गई प्रेम विहग का वास!
आज मधुवन की उन्मद वात
हिला रे गई पात सा गात,
मंद्र, द्रुम मर्मर सा अज्ञात
उमड़ उठता उर में उच्छ्वास!
नवल मेरे जीवन की डाल
बन गई प्रेम विहग का वास!

मदिर कोरों-से कोरक जाल
बेधते मर्म बार रे बार,
मूक चिर प्राणों का पिक बाल
आज कर उठता करुण पुकार;
अरे अब जल जल नवल प्रवाल
लगाते रोम रोम में ज्वाल,
आज बौरे रे तरुण रसाल
भौंर मन मँडरा गई सुवास!

मार्च, १९२८]

गृह काज

आज रहने दो यह गृह काज;
प्राण ! रहने दो यह गृह काज !
आज जाने कैसी बातास
छोड़ती सौरभ श्लथ उच्छ्वास,

प्रिये लालस सालस वातास
जगा रोओं में सौ अभिलाष !

आज उर के स्तर स्तर में, प्राण !
सजग सौ सौ स्मृतियाँ सुकुमार,
दृगों में मधुर स्वप्न संसार,
मर्म में मदिर स्पृहा का भार !

शिथिल, स्वप्निल पंखड़ियाँ खोल
आज अपलक कलिकाएँ बाल,
गूँजता भूला भौंरा डोल
सुमुखि ! उर के सुख से वाचाल !

आज चंचल चंचल मन प्राण,
आज रे शिथिल शिथिल तन भार !
आज दो प्राणों का दिनमान,
आज संसार नहीं संसार !

आज क्या प्रिये, सुहाती लाज ?
आज रहने दो सब गृह काज !

फ़रवरी, १६३२]

प्रथम मिलन

मंजरित आम्र वन छाया में
हम प्रिये, मिले थे प्रथम बार,
ऊपर हरीतिमा नभ गुंजित,
नीचे चंद्रातप छना स्फार !

तुम मुग्धा थीं, अति भाव प्रवण,
उकसे थे अँबियों से उरोज,
चंचल, प्रगल्भ, हँसमुख, उदार,
मैं सलज,—तुम्हें था रहा खोज !
छनती थी ज्योत्स्ना शशि मुख पर,
मैं करता था मुख सुधा पान,—
कूकी थी कोकिल, हिले मुकुल,
भर गए गंध से मुग्ध प्राण !

तुमने अधरों पर धरे अधर,
मैंने कोमल वपु भरा गोद,
था आत्म समर्पण सरल, मधुर,
मिल गए सहज मारुतामोद !

प्रथम मिलन

मंजरित आम्र द्रुम के नीचे
हम प्रिये, मिले थे प्रथम बार
मधु के कर में था प्रणय बाण,
पिक के उर में पावक पुकार !

मई '३५]

विजन घाटी

वह विजन चाँदनी की घाटी
छाई मृदु वन तरु गंध जहाँ,
नीबू आड़ू के मुकुलों के
मद से मलयानिल लदा वहाँ !

सौरभ श्लथ हो जाते तन मन,
बिछते झर झर मृदु सुमन शयन,
जिन पर छन, कंपित पत्रों से,
लिखती कुछ ज्योत्स्ना जहाँ तहाँ !

आ कोकिल का कोमल कूजन,
उकसाता आकुल उर कंपन,
यौवन का री वह मधुर स्वर्ग,
जीवन बाधाएँ वहाँ कहाँ ?

मई '३५]

मधु स्मृति

(उड़ता है जब प्राण!
तुम्हारी सारी का सित छोर,
सौ वसंत, सौ मलय
हृदय को करते गंध विभोर।
उड़ता उर से कभी
तुम्हारी सारी का जब छोर।)

ग्रीवा मोड़, कभी विलोकती
जब तुम वंकिम कोर,
खिल खिल पड़ते श्वेत कमल,
नाचतीं विलोल हिलोर।
ग्रीवा मोड़ हंसिनी सी,
देखतीं फेर जब कोर।

जब जब प्राण! तुम्हारी मधुस्मृति
देती मुझको बोर,
जीवन के घन अंधकार में
हो उठता नव भोर।
मधुर प्रेम की उज्वल स्मृति जब
देती मन को बोर।

१९३८]

मधुवन

आज नव मधु की प्रात
झलकती नभ पलकों में प्राण!
मुग्ध यौवन के स्वप्न समान,—
झलकती, मेरी जीवन स्वप्न! प्रभात
तुम्हारी मुख छवि सी रुचिमान!

आज लोहित मधु प्रात
व्योम लतिका में छायाकार
खिल रही नव पल्लव सी लाल,
तुम्हारे मधुर कपोलों पर सुकुमार
लाज का ज्यों मृदु किसलय जाल!

आज उन्मद मधु प्रात
गगन के इंदीवर से नील
झर रही स्वर्ण मरंद समान,
तुम्हारे शयन शिथिल सरसिज उन्मील
छलकता ज्यों मदिरालस, प्राण!

आज स्वर्णिम मधु प्रात
व्योम के विजन कुंज में प्राण!
खुल रही नवल गुलाब समान,
लाज के विनत वृंत पर ज्यों अभिराम
तुम्हारा मुख अरविन्द सकाम।

प्रिये, मुकुलित मधु प्रात
मुक्त नभ वेणी में सोभार
सुहाती रक्त पलाश समान;
आज मधुवन मुकुलों में झुक साभार
तुम्हें करता निज विभव प्रदान।

× × ×

डोलने लगी मधुर मधुवात
हिला तृण व्रतति, कुंज, तरु पात,
डोलने लगी प्रिये ! मृदु वात
गुंज--मधु--गंध--धूलि--हिम--गात ।

खोलने लगीं, शयित चिरकाल,
नवल कलि अलस पलक दल जाल,
बोलने लगी, डाल से डाल
प्रमुद, पुलकाकुल कोकिल बाल !

युवाओं का प्रिय पुष्प गुलाब,
प्रणय स्मृति चिह्न, प्रथम मधुबाल,
खोलता लोचन दल मदिराभ,
प्रिये, चल अलिदल से वाचाल।

आज मुकुलित कुसुमित सब ओर
तुम्हारी छबि की छटा अपार,
फिर रहे उन्मद मधु प्रिय भौंर
नयन पलकों के पंख पसार।

तुम्हारी मंजुल मूर्ति निहार
लग गई मधु के वन में ज्वाल,
खड़े किंशुक, अनार, कचनार
लालसा की लौ से उठ लाल।

कपोलों की मदिरा पी, प्राण!
आज पाटल गुलाब के जाल,
विनत शुक नासा का धर ध्यान
बन गये पुष्प पलाश अराल।

तुम्हारी पी मुख वास तरंग
आज बौरे भौंरे, सहकार,
चुनाती नित लवंग निज अंग
तन्वि! तुम सी बनने सुकुमार

लालिमा भर फूलों में, प्राण!
सीखती लाजवती मृदु लाज,
माधवी करती झुक सम्मान
देख तुम में मधु के सब साज।

नवेली बेला उर की हार,
मोतिया मोती की मुसकान,
मोगरा कर्णफूल सा स्फार,
अँगुलियाँ मदनबान की बान।

तुम्हारी तनु तनिमा लघु भार
बनी मृदु व्रतति प्रतति का जाल,
मृदुलता सिरिस मुकुल सुकुमार,
विपुल पुलकावलि चीना डाल।

प्रिये, कलि कुसुम कुसुम में आज
मधुरिमा मधु, सुखमा सुविकास,
तुम्हारी रोम रोम छवि व्याज
छा गया मधुवन में मधुमास।

× × ×

वितरती गृह-वन मलय समीर
साँस, सुधि, स्वप्न, सुरभि, सुख, गान,
मार केशर शर मलय समीर
हृदय हुलसित कर, पुलकित प्राण।

बेलि सी फैल फैल नवजात
चपल, लघु पद, लहलह, सुकुमार,
लिपट लगती मलयानिल गात
झूम, झुक झुक सौरभ के भार।

आज, तृण, छद, खग, मृग, पिक, कीर,
कुसुम, कलि, व्रतति, विटप, सोच्छ्वास,
अखिल, आकुल, उत्कलित अधीर,
अवनि, जल, अनिल, अनल, आकाश!

आज वन में पिक, पिक में गान,
विटप में कलि, कलि में सुविकास,
कुसुम में रज, रज में मधु, प्राण!
सलिल में लहर, लहर में लास।

देह में पुलक, उरों में भार,
भ्रुवों में भंग, दृगों में बाण,
अधर में अमृत, हृदय में प्यार,
गिरा में लाज, प्रणय में मान।

तरुण विटपों से लिपट सुजात,
सिहरतीं लतिका मुकुलित गात,
सिहरतीं रह रह सुख से, प्राण!
लोभ लतिका बन कोमल गात।

गंध-गुंजित कुंजों में आज,
बँधे बाँहों में छायाऽलोक,
मर्मरित छत्र, पत्र दल व्याज
लिए द्रुम, तुमको खड़ी विलोक।

मिल रहे नवल बेलि तरु, प्राण!
शुकी शुक, हंस हंसिनी संग,
लहर सर, सुरभि समीर, विहान,
मृगी मृग, कलि अलि, किरण पतंग।

× × ×

आज तन तन मन मन हों लीन,
प्राण ! सुख सुख, स्मृति स्मृति चिरसात्
एक क्षण, अखिल दिशावधि हीन,
एक रस, नाम रूप अज्ञात !

अगस्त, १६३०]

वसंत

चंचल पग दीप शिखा के धर
गृह, मग वन में आया वसंत !
सुलगा फाल्गुन का सूनापन
सौन्दर्य शिखाओं में अनंत !

सौरभ की शीतल ज्वाला से
फैला उर उर में मधुर दाह
आया वसंत, भर पृथ्वी पर
स्वर्गिक सुंदरता का प्रवाह !

पल्लव पल्लव में नवल रुधिर,
पत्रों में मांसल रंग खिला,
आया नीली पीली लौ से
पुष्पों के चित्रित दीप जला !

अधरों की लाली से चुपके
कोमल गुलाब के गाल लजा,
आया, पंखड़ियों को काले—
पीले धब्बों से सहज सजा !

कलि के पलकों में मिलन स्वप्न,
अलि के अंतर में प्रणय गान

लेकर आया, प्रेमी वसंत,—
आकुल जड़ चेतन स्नेह - प्राण
काली कोकिल !—सुलगा उर में
स्वरमयी वेदना का अँगार,
आया वसंत, घोषित दिगंत
करती, भर पावक की पुकार !

[आः, प्रिये ! निखिल ये रूप रंग
रिल मिल अंतर में स्वर अनंत
रचते सजीव जो प्रणय मूर्ति
उसकी छाया, आया वसंत !]

एप्रिल, १९३५]

अल्मोड़े का वसंत

विद्रुम औ' मरकत की छाया,
सोने चाँदी का सूर्यातप;
हिम परिमल की रेशमी वायु,
शत रत्नछाय, खग चित्रित नभ !

पतझड़ के कृश, पीले तन पर
पल्लवित तरुण लावण्य लोक;
शीतल हरीतिमा की ज्वाला
फैली दिशि दिशि कोमलाऽलोक !

आह्लाद, प्रेम औ' यौवन का
नव स्वर्ग, सद्य सौन्दर्य सृष्टि;
मंजरित प्रकृति, मुकुलित दिगंत,
कूजन गुंजन की व्योम वृष्टि !

—लो, चित्रशलभ सी, पंख खोल
उड़ने को है कुसुमित घाटी,—
यह है अल्मोड़े का वसंत,
खिल पड़ी निखिल पर्वत पाटी !

मई, १९३५]

मधु प्रभात

लो, जग की डाली डाली पर
जागीं नव जीवन की कलियाँ!
मिट्टी ने जड़ निद्रा तज कर
खोलीं स्वप्निल पलकावलियाँ!

मलयानिल ने सरका उर से
उर्वी का तंद्रिल छायांचल,
रज रज के रोएँ रोएँ में
छू छू भर दीं पुलकावलियाँ।

शशि किरणों ने मोती भर भर
गूँथीं उड़तीं सौरभ अलकें
गूँजीं, मधु अधरों पर मँडरा,
इच्छाओं की मधुपावलियाँ।

श्री, सुख, स्वप्नों से भर लाई
लो, ऊषा सोने की डलियाँ,
मुखरित रखतीं जग का आँगन
जीवन की नव नव रँगरलियाँ!

ज्योत्स्ना से]
१९३२

नव संतति

मृदु तन, हम मधु बाल, मधुर मन ।
नव जीवन से नव मुकुलित नित
जरा जीर्ण जग डाल, विटप, वन ।
मृदु तन, हम मधु बाल, मधुर मन ।

नव इच्छाओं का नव गुंजन,
मंजु मंजरित तन, मन, लोचन,
नव यौवन पिक पंचम कूजन
मुखरित विश्व रसाल हरित, घन ।
मृदु तन, हम मधु बाल, मधुर मन ।

नव छवि, नव रँग के कलि किसलय,
नव वय के अलि, नवल कुसुम चय,
मधुर प्रणय नव, नव मधु संचय,
जग मधुछत्र विशाल, सुपूरन ।
मृदु तन, हम मधु बाल, मधुर मन ।

१९३१]

लिली के प्रति

सुखमा की जितनी मधुर कली,
उन सबमें सुंदर सलज लिली।
वह छायातप में सहज पली,
अपनी शोभा से स्वयं खिली।

वह तरुण प्रणय की पलकों को
सौंदर्य स्वप्न सी प्रथम मिली,
वह प्यारी, गोरी, रूप परी,
जग में मेरे ही संग हिली।

ज्योत्स्ना से]

तितलियों का गीत

जीवन के सुखमय स्पर्शों सी
हम खोल खोल पुलकों के पर,
उड़ती फिरतीं सुख के नभ में
स्मिति के आतप में ज्यों स्मितिचर !

पा साँस चेतना की मानो
जड़ वृंत नीड़ से उड़ सत्वर
हम फूली फिरतीं फूलों सी
पंखों की सुरँग पँखड़ियों पर।

पल पल चल पलकों में उड़तीं
चितवन की परियों सी सुंदर
हम शिशु के अधरों पर मुकुलित
स्वप्नों की कलियों सी सुखकर !

चेतना रेशमी सुखमा की
सौ सौ रुचि रंग रूप धर कर
उड़ती हो ज्यों रचना सुख में,
रँग रँग जीवन के गति प्रिय पर !

(फूलों तितलियों का गान)

तितली—

हों जग में मधुर फूल से मुख,
जीवन में क्षण क्षण चुंबन सुख!

फूल—

हों इच्छाओं के चंचल पर
अधरों से मिलते रहें अधर!

तितली—

हों हृदय प्रणय मधु से मधुमय,
उर सौरभ से जग सौरभमय!

फूल—

हों सबके प्रिय स्नेही सहचर,
यह धरा स्वर्ग ही सी सुखकर!

ज्योत्स्ना से]

लोगी मोल ?

लाई हूँ फूलों का हास,
लोगी मोल, लोगी मोल ?
तरल तुहिन वन का उल्लास
लोगी मोल, लोगी मोल ?

फैल गई मधु ऋतु की ज्वाल,
जल जल उठतीं वन को डाल;
कोकिल से कुछ कोमल बोल
लोगी मोल, लोगी मोल ?

उमड़ पड़ा पावस परिप्रोत,
फूट रहे नव नव जल स्रोत;
जीवन की ये लहरें लोल
लोगी मोल, लोगी मोल ?

विरल जलद पट खोल अजान
छाई शरद रजत मुसकान,
यह छवि की ज्योत्स्ना अनमोल
लोगी मोल, लोगी मोल ?

अधिक अरुण है आज सकाल—
चहक रहे जग जग खग बाल;
चाहो तो सुन लो जी खोल
कुछ भी आज न लूँगी मोल !

अप्रैल, १६२७]

मधुकरी

सिखा दो ना, हे मधुप कुमारि !
मुझे भी अपने मीठे गान,
कुसुम के चुने कटोरों से
करा दो ना, कुछ कुछ मधुपान !

नवल कलियों के धोरे झूम,
प्रसूनों के अधरों को चूम,
मुदित, कवि सी तुम अपना पाठ
सीखती हो सखि ! जग में घूम;
सुना दो ना, तब हे सुकुमारि;
मुझे भी ये केसर के गान !

किसी के उर में तुम अनजान
कभी बँध जाती, बन चितचोर;
अधखिले, खिले सुकोमल गान
गूँथती हो फिर उड़ उड़ भोर;
मुझे भी बतला दो न कुमारि !
मधुर निशि स्वप्नों के वे गान !

सूँघ चुन कर, सखि ! सारे फूल,
सहज बिंध बँध, निज सुख दुख भूल,

सरस रचती हो ऐसा राग
धूल बन जाती है मधुमूल;

पिला दो ना, तब हे सुकुमारि !
इसी से थोड़े मधुमय गान;
कुसुम के खुले कटोरों से
करा दो ना, कुछ कुछ मधुपान !

सितम्बर, १६२२]

ओस का गीत

जीवन चल, जीवन कल,
जीवन हिमजल-लघु-पल !

विश्व सुखद, विश्व विशद,
विश्व विकच प्रेम कमल !
जीवन चल, जीवन कल,
जीवन हिमजल-लघु-पल !

खिल खिल कर, झिलमिल कर
हिलमिल लें, बंधु ! सकल;
जन्म नवल, अगणित पल
लेंगे कल, सृजन प्रबल !
जीवन चल, जीवन कल,
जीवन हिमजल-लघु-पल !

ज्योत्स्ना से]

गुंजन

वन वन, उपवन—
छाया उन्मन उन्मन गुंजन,
नव वय के अलियों का गुंजन !

रुपहले, सुनहले आम्र बौर,
नीले, पीले औ' ताम्र भौंर,
रे गंध अंध हो ठौर ठौर
उड़ पाँति पाँति में चिर उन्मन
करते मधु के वन में गुंजन।

वन के विटपों की डाल डाल
कोमल कलियों से लाल लाल,
फैली नव मधु की रूप ज्वाल,
जल जल प्राणों के अलि उन्मन,
करते स्पंदन, करते गुंजन।

अब फैला फूलों में विकास,
मुकुलों के उर में मदिर वास,
अस्थिर सौरभ से मलय श्वास,
जीवन मधु संचय को उन्मन
करते प्राणों के अलि गुंजन।

फरवरी, १९३२]

तप रे,

तप रे मधुर मधुर मन !
विश्व वेदना में तप प्रतिपल,
जग जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष, उज्वल औ' कोमल, विमल
तप रे विधुर विधुर मन।

अपने सजल स्वर्ण से पावन
रच जीवन की मूर्ति पूर्णतम,
स्थापित कर जग में अपनापन,
ढल रे ढल आतुर मन।

तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन,
गंध हीन तू गंध युक्त बन,
निज अरूप में भर स्वरूप, मन !
मूर्तिवान बन, निर्धन !
गल रे गल निष्ठुर मन !

जनवरी, १९३२]

सुख दुख

मैं नहीं चाहता चिर सुख,
मैं नहीं चाहता चिर दुख;
सुख दुख की खेल मिचौनी
खोले जीवन अपना मुख।

सुख दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरन;
फिर घन में ओझल हो शशि,
फिर शशि से ओझल हो घन।

जग पीड़ित है अति दुख से,
जग पीड़ित रे अति सुख से,
मानव जग में बँट जावें
दुख सुख से औ' सुख दुख से।

अविरत दुख है उत्पीड़न,
अविरत सुख भी उत्पीड़न,
दुख सुख की निशा दिवा में,
सोता जगता जग जीवन।

यह साँझ उषा का आँगन,
आलिंगन विरह मिलन का,
चिर हास अश्रुमय आनन
रे इस मानव जीवन का!

फरवरी, १९३२]

उर की डाली

देखूँ सबके उर की डाली—

किसने रे क्या क्या चुने फूल
जग के छवि उपवन से अकूल ?
इसमें कलि, किसलय, कुसुम, शूल !

किस छवि, किस मधु के मधुर भाव ?
किस रँग, रस, रुचि से किसे चाव !
कवि से रे किसका क्या दुराव !

किसने ली पिक की विरह तान ?
किसने मधुकर का मिलन गान ?
या फुल्ल कुसुम, या मुकुल म्लान ?

देखूँ सब के उर की डाली—

सब में कुछ सुख के तरुण फूल,
सब में कुछ दुख के करुण शूल;—
सुख दुःख न कोई सका भूल !

फरवरी, १९३२]

अवलंबन

आँसू की आँखों से मिल
भर हो आते हैं लोचन,
हँसमुख ही से जीवन का
पर, हो सकता अभिवादन।

अपने मधु में लिपटा पर
कर सकता मधुप न गुंजन,
करुणा से भारी अंतर
खो देता जीवन कंपन।

विश्वास चाहता है मन,
विश्वास पूर्ण जीवन पर;
सुख दुख के पुलिन डुबा कर
लहराता जीवन सागर!

दुख इस मानव आत्मा का
रे नित का मधुमय भोजन,
दुख के तम को खा खा कर
भरती प्रकाश से वह मन।

अस्थिर है जग का सुख दुख,
जीवन ही नित्य, चिरंतन!
सुख दुख से ऊपर, मन का
जीवन ही रे अवलंबन!

जनवरी, १९३२]

चिर सुख

कुसुमों के जीवन का पल
हँसता ही जग में देखा,
इन म्लान, मलिन अधरों पर
स्थिर रही न स्मिति की रेखा !

वन की सूनी डाली पर
सीखा कलि ने मुसकाना,
मैं सीख न पाया अब तक
सुख से दुख को अपनाना।

काँटों से कुटिल भरी हो
यह जटिल जगत की डाली
इसमें ही तो जीवन के
पल्लव की फूटी लाली।

अपनी डाली के काँटे
बेधते नहीं अपना तन,
सोने सा उज्ज्वल बनने
तपता नित प्राणों का धन।

दुख दावा से नव अंकुर
पाता जग जीवन का वन,
करुणार्द्र विश्व की गर्जन
बरसाती नव जीवन कण!

फरवरी, १९३२]

उन्मन

क्या मेरी आत्मा का चिर धन?
मैं रहता नित उन्मन, उन्मन!

प्रिय मुझे विश्व यह सचराचर,
तृण, तरु, पशु, पक्षी, नर, सुरवर,
सुंदर अनादि शुभ सृष्टि अमर;
निज सुख से ही चिर चंचल मन,
मैं हूँ प्रतिपल उन्मन, उन्मन।

मैं प्रेमी उच्चादर्शों का,
संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शों का,
जीवन के हर्ष विमर्षों का;
लगता अपूर्ण मानव जीवन,
मैं इच्छा से उन्मन, उन्मन!

जग जीवन में उल्लास मुझे,
नव आशा, नव अभिलाष मुझे,
ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे;
चाहिए विश्व को नव जीवन,
मैं आकुल रे उन्मन, उन्मन!

फ़रवरी, १९३२]

बापू के प्रति

तुम मांस हीन, तुम रक्त हीन,
हे अस्थि शेष! तुम अस्थि हीन,
तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल,
हे चिर पुराण, हे चिर नवीन!
तुम पूर्ण इकाई जीवन की,
जिसमें असार भव-शून्य लीन;
आधार अमर, होगी जिसपर
भावी की संस्कृति समासीन!

तुम मांस, तुम्हीं हो रक्त अस्थि,—
निर्मित जिनसे नवयुग का तन,
तुम धन्य! तुम्हारा निःस्व त्याग
है विश्व भोग का वर साधन।
इस भस्म काम तन की रज से
जग पूर्ण काम नव जग जीवन
बीनेगा सत्य अहिंसा के
ताने बानों से मानवपन!

सदियों का दैन्य तमिस्र तूम,
धुन तुमने, कात प्रकाश सूत,
हे नग्न! नग्न पशुता ढँक दी
बुन नव संस्कृत मनुजत्व पूत।
जग पीड़ित छूतों से प्रभूत,
छू अमृत स्पर्श से, हे अछूत!
तुमने पावन कर, मुक्त किए
मृत संस्कृतियों के विकृत भूत!

सुख भोग खोजने आते सब,
आए तुम करने सत्य खोज,
जग की मिट्टी के पुतले जन,
तुम आत्मा के, मन के मनोज!
जड़ता, हिंसा, स्पर्धा में भर
चेतना, अहिंसा, नम्र ओज,
पशुता का पंकज बना दिया
तुमने मानवता का सरोज!

पशुबल की कारा से जग को
दिखलाई आत्मा की विमुक्ति,
विद्वेष, घृणा से लड़ने को
सिखलाई दुर्जय प्रेम युक्ति;

वर श्रम-प्रसूति से की कृतार्थ
तुमने विचार परिणीत उक्ति,
विश्वानुरक्त हे अनासक्त!
सर्वस्व त्याग को बना भुक्ति!

सहयोग सिखा शासित जन को
शासन का दुर्वह हरा भार,
होकर निरस्त्र, सत्याग्रह से
रोका मिथ्या का बल प्रहार;
बहु भेद विग्रहों में खोई
ली जीर्ण जाति क्षय से उबार,
तुमने प्रकाश को कह प्रकाश,
औ' अंधकार को अंधकार।

उर के चरखे में कात सूक्ष्म
युग युग का विषय जनित विषाद,
गुंजित कर दिया गगन जग का
भर तुमने आत्मा का निनाद।
रँग रँग खद्दर के सूत्रों में
नव जीवन आशा, स्पृहा, ह्लाद,
मानवी कला के सूत्रधार!
हर दिया यंत्र कौशल प्रवाद।

जड़वाद जर्जरित जग में तुम
अवतरित हुए आत्मा महान,
यंत्राभिभूत युग में करने
मानव जीवन का परित्राण;
बहु छाया बिम्बों में खोया
पाने व्यक्तित्व प्रकाशवान,
फिर रक्त मांस प्रतिमाओं में
फूँकने सत्य से अमर प्राण!

संसार छोड़ कर ग्रहण किया
नर जीवन का परमार्थ सार,
अपवाद बने, मानवता के
ध्रुव नियमों का करने प्रचार;
हो सार्वजनिकता जयी, अजित!
तुमने निजत्व निज दिया हार,
लौकिकता को जीवित रखने
तुम हुए अलौकिक, हे उदार!

मंगल - शशि - लोलुप - मानव थे
विस्मित ब्रह्मांड परिधि विलोक,
तुम केन्द्र खोजने आए तब
सब में व्यापक, गत राग शोक;

पशु पक्षी पुष्पों से प्रेरित
उद्दाम-काम जन-क्रांति रोक,
जीवन इच्छा को आत्मा के
वश में रख, शासित किए लोक।

था व्याप्त दिशावधि ध्वांत : भ्रांत
इतिहास विश्व उद्भव प्रमाण,
बहु हेतु, बुद्धि, जड़ वस्तु वाद
मानव संस्कृति के बने प्राण;
थे राष्ट्र, अर्थ, जन, साम्य वाद
छल सभ्य जगत के शिष्ट मान,
भू पर रहते थे मनुज नहीं,
बहु रूढ़ि रीति प्रेतों समान—

तुम विश्व मंच पर हुए उदित
बन जग जीवन के सूत्रधार,
पट पर पट उठा दिए मन से
कर नर चरित्र का नवोद्धार;
आत्मा को विषयाधार बना,
दिशि पल के दृश्यों को सँवार,
गा गा—एकोहं बहु स्याम,
हर लिए भेद, भव भीति भार!

एकता इष्ट निर्देश किया,
जग खोज रहा था जब समता,
अंतर शासन चिर राम राज्य,
औ' वाह्य, आत्महन अक्षमता;
हों कर्म निरत जन, राग विरत,
रति विरति व्यतिक्रम भ्रम ममता,
प्रतिक्रिया क्रिया साधन अवयव,
है सत्य सिद्ध, गति यति क्षमता।

ये राज्य, प्रजा, जन, साम्य तंत्र
शासन चालन के कृतक यान,
मानस, मानुषी, विकास शास्त्र
हैं तुलनात्मक, सापेक्ष ज्ञान;
भौतिक विज्ञानों की प्रसूति
जीवन - उपकरण - चयन - प्रधान,
मथ सूक्ष्म स्थूल जग, बोले तुम—
मानव मानवता का विधान!

साम्राज्यवाद था कंस, वंदिनी
मानवता पशु बलाक्रांत,
शृङ्खला दासता, प्रहरी बहु
निर्मम शासन-पद शक्ति भ्रांत;

कारा गृह में दे दिव्य जन्म
मानव आत्मा को मुक्त, कांत,
जन शोषण की बढ़ती यमुना
तुमने की नत-पद-प्रणत शांत !

कारा थी संस्कृति विगत, भित्ति
बहु धर्म--जाति--गत--रूप--नाम,
वंदी जग जीवन, भू विभक्त,
विज्ञान मूढ़ जन प्रकृति-काम;
आए तुम मुक्त पुरुष, कहने—
मिथ्या जड़ बंधन, सत्य राम,
नानृतं जयति सत्यं, मा भैः,
जय ज्ञान ज्योति, तुमको प्रणाम !

अप्रैल '३६]

द्रुत झरो

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र !
हे स्रस्त ध्वस्त ! हे शुष्क शीर्ण !
हिम ताप पीत, मधुवात भीत,
तुम वीत राग, जड़, पुराचीन !!

निष्प्राण विगत युग ! मृत विहंग !
जग नीड़ शब्द औ' श्वासहीन,
च्युत, अस्त व्यस्त पंखों से तुम
झर झर अनंत में हो विलीन !

कंकाल जाल जग में फैले
फिर नवल रुधिर,—पल्लव लाली !
प्राणों के मर्मर से मुखरित
जीवन की मांसल हरियाली !

मंजरित विश्व में यौवन के
जग कर जग का पिक, मतवाली
निज अमर प्रणय स्वर मदिरा से
भर दे फिर नव युग की प्याली !

फ़रवरी '३४]

आकांक्षा

झर पड़ता जीवन डाली से
मैं पतझड़ का सा जीर्ण पात !—
केवल, केवल जग आँगन में
लाने फिर से मधु का प्रभात !

मधु का प्रभात !—लद लद जातीं
वैभव से जग की डाल डाल,
कलि कलि, किसलय में जल उठती
सुन्दरता की स्वर्गीय ज्वाल !

नव मधु प्रभात !—गूँजते मधुर
उर उर में नव आशाऽभिलाष,
सुख सौरभ, जीवन कलरव से
भर जाता सूना महाकाश !

आः मधु प्रभात !—जग के तम में
भरती चेतना अमर प्रकाश,
मुरझाए मानस मुकुलों में
पाती नव मानवता विकाश !

मधु युग प्रभात! नभ में सस्मित
नाचती धरित्री मुक्त पाश!
रवि शशि केवल साक्षी होते,
अविराम प्रेम करता प्रकाश!

मैं झरता जीवन डाली से
साह्लाद, शिशिर का शीर्ण पात!
फिर से जगती के कानन में
आ जाता नवमधु का प्रभात!

अप्रैल '३५]

गा, कोकिल !

गा, कोकिल, बरसा पावक कण !
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन,
ध्वंस भ्रंश जग के जड़ बंधन !
पावक पग धर आवे नूतन,
हो पल्लवित नवल मानवपन !

गा, कोकिल, भर स्वर के कंपन !
झरें जाति कुल वर्ण पर्ण घन,
अंध नीड़-से रूढ़ि रीति छन,
व्यक्ति - राष्ट्र - गत - राग - द्वेष - रण,
झरें, मरें विस्मृति में तत्क्षण !

गा, कोकिल, गा,—कर मत चिन्तन !
नवल रुधिर से भर पल्लव तन,
नवल स्नेह सौरभ से यौवन,
कर मंजरित नव्य जग जीवन,
गूँज उठें पी पी मधु सब जन !

गा, कोकिल, नव गान कर सृजन !
रच मानव के हित नूतन मन,
वाणी, वेश, भाव नव शोभन,
स्नेह, सुहृदता हो मानस धन,
करें मनुज नव जीवन यापन !

गा, कोकिल, संदेश सनातन!
मानव दिव्य स्फुलिंग चिरंतन,
वह न देह का नश्वर रज कण!
देश काल हैं उसे न बंधन,
मानव का परिचय मानवपन!
कोकिल, गा, मुकुलित हों दिशि क्षण!

अप्रैल, १९३५]

कलरव

बाँसों का झुरमुट—
संध्या का झुटपुट—
हैं चहक रहीं चिड़ियाँ
टी वी टी—टुट् टुट्!

वे ढाल ढाल कर उर अपने
हैं बरसा रहीं मधुर सपने
श्रम जर्जर विधुर चराचर पर,
गा गीत स्नेह वेदना सने!

ये नाप रहे निज घर का मग
कुछ श्रमजीवी धर डगमग डग,
भारी है जीवन! भारी पग!!

आः, गा गा शत शत सहृदय खग,
संध्या बिखरा निज स्वर्ण सुभग
औ' गंध पवन झल मंद व्यजन
भर रहे नया इनमें जीवन,
ढीली हैं जिनकी रग रग!

—यह लौकिक औ' प्राकृतिक कला,
यह काव्य अलौकिक सदा चला
आ रहा,—सृष्टि के साथ पला !

× × × ×

गा सके खगों सा मेरा कवि,
विश्री जग की संध्या की छवि !
गा सके खगों सा मेरा कवि,
फिर हो प्रभात,—फिर आए रवि !

अक्तूबर '३५]

मानव जग

वे चहक रहीं कुंजों में चंचल सुंदर
चिड़ियाँ, उर का सुख बरस रहा स्वर स्वर पर ।
पत्रों पुष्पों से टपक रहा स्वर्णातप
प्रातः समीर के मृदु स्पर्शों से कँप कँप !
शत कुसुमों में हँस रहा कुंज उडु उज्वल,
लगता सारा जग सद्यस्मित ज्यों शतदल ।
है पूर्ण प्राकृतिक सत्य ! किन्तु मानव जग !
क्यों म्लान तुम्हारे कुंज, कुसुम, आतप, खग ?
जो एक, असीम, अखंड मधुर व्यापकता
खो गई तुम्हारी वह जीवन सार्थकता !
लगती विश्री औ' विकृत आज मानव कृति,
एकत्व शून्य है विश्व मानवी संस्कृति !

मई '३५]

वे डूब गए

वे डूब गए—सब डूब गए
दुर्दम, उदग्रशिर अद्रिशिखर !
स्वप्नस्थ हुए स्वर्णातप में
लो, स्वर्ण स्वर्ण अब सब भूधर !

पल में कोमल पड़, पिघल उठे
सुंदर बन, जड़, निर्मम प्रस्तर,
सब मंत्र मुग्ध हो, जड़ित हुए,
लहरों-से चित्रित लहरों पर !

मानव जग में गिरि कारा सी
गत युग संस्कृतियाँ दुर्धर
बंदी की हैं मानवता को
रच देश जाति की भित्ति अमर।

ये डूबेंगी—सब डूबेंगी
पा नव मानवता का विकाश,
हँस देगा स्वर्णिम, वज्र-लौह
छू मानव आत्मा का प्रकाश !

अप्रैल '३६]

ताज

हाय ! मृत्यु का ऐसा अमर, अपार्थिव पूजन ?
जब विषएण, निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन !
संग सौध में हो शृंगार मरण का शोभन,
नग्न, क्षुधातुर, वास विहीन रहें जीवित जन ?
मानव ! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति ?
आत्मा का अपमान, प्रेत औ' छाया से रति !!
प्रेम-अर्चना यही, करें हम मरण को वरण ?
स्थापित कर कंकाल, भरें जीवन का प्रांगण ?
शव को दें हम रूप, रंग, आदर मानव का ?
मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का ?
गत युग के बहु धर्म रूढ़ि के ताज मनोहर
मानव के मोहांध हृदय में किए हुए घर !
भूल गए हम जीवन का संदेश अनश्वर
मृतकों के हैं मृतक, जीवितों का है ईश्वर !

अक्तूबर '३५]

मानव !

सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर,
मानव ! तुम सबसे सुन्दरतम,
निर्मित सब की तिल सुषमा से
तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम !

यौवन ज्वाला से वेष्टित तन,
मृदु त्वच, सौन्दर्य प्ररोह अंग,
न्योछावर जिनपर निखिल प्रकृति,
छाया प्रकाश के रूप रंग !

धावित कृश नील शिराओं में
मदिरा से मादक रुधिर धार,
आँखें हैं दो लावण्य लोक,
स्वर में निसर्ग संगीत सार !

पृथु उर, उरोज, ज्यों सर, सरोज,
दृढ़ बाहु प्रलंब प्रेम बंधन,
पीनोरु स्कंध जीवन तरु के,
कर, पद, अंगुलि, नख शिख शोभन !

यौवन की मांसल, स्वस्थ गंध,
नव युग्मों का जीवनोत्सर्ग !

आह्लाद अखिल, सौन्दर्य अखिल,
आः प्रथम प्रेम का मधुर स्वर्ग !

आशाऽभिलाष, उच्चाकांक्षा,
उद्यम अजस्र, विघ्नों पर जय,
विश्वास, असद् सद् का विवेक,
दृढ़ श्रद्धा, सत्य प्रेम अक्षय !

मानसी भूतियाँ ये अमंद
सहृदयता, त्याग, सहानुभूति,—
जो स्तंभ सभ्यता के पार्थिव,
संस्कृति स्वर्गीय,—स्वभाव पूर्ति !

मानव का मानव पर प्रत्यय,
परिचय, मानवता का विकास,
विज्ञान ज्ञान का अन्वेषण,
सब एक, एक सब में प्रकाश !

प्रभु का अनंत वरदान तुम्हें,
उपभोग करो प्रतिक्षण नव नव,
क्या कमी तुम्हें है त्रिभुवन में
यदि बने रह सको तुम मानव ?

एप्रिल '३५]

सृष्टि

मिट्टी का गहरा अंधकार,
डूबा है उसमें एक बीज,—
वह खो न गया, मिट्टी न बना,
कोदों सरसों से क्षुद्र चीज़ !

उस छोटे उर में छिपे हुए
हैं डाल, पात औ' स्कंध, मूल,
संसृति की गहरी हरीतिमा,
बहु रूप रंग, फल और फूल !

वह है मुट्ठी में बंद किए
वट के पादप का महाकार,
संसार एक, आश्चर्य एक,
वह एक बूँद, सागर अपार !

बंदी उसमें जीवन - अंकुर,
जो तोड़ निखिल जग के बंधन
पाने को है निज सत्व, मुक्ति,
जड़ निद्रा से जग कर चेतन !

आः, भेद न सका सृजन रहस्य
कोई भी, वह जो क्षुद्र पोत

उसमें अनंत का है निवास,
वह जग-जीवन से ओतप्रोत!

मिट्टी का गहरा अंधकार,
सोया है उसमें एक बीज,—
उसका प्रकाश उसके भीतर,
वह अमर पुत्र! वह तुच्छ चीज़?

मई '३५]

मानव स्तव

न्योछावर स्वर्ग इसी भू पर,
देवता यही मानव शोभन,
अविराम प्रेम की बाँहों में
है मुक्ति यही जीवन बंधन !

है रे न दिशावधि का मानव,
वह चिर पुराण, वह चिर नूतन,
मानव के हैं सब जाति, वर्ण,
सब धर्म, ज्ञान, संस्कृति, बल, धन !

मृन्मय प्रदीप में दीपित हम
शाश्वत प्रकाश की शिखा सुषम,
हम एक ज्योति के दीप अखिल,
ज्योतित जिनसे जग का आँगन !

हम पृथ्वी की प्रिय तारावलि,
जीवन वसंत के मुकुल, सुमन,
सुरभित सुख से गृह गृह, उपवन,
उर उर में पूर्ण प्रेम मधु धन !

ज्योत्स्ना से]

जीवन क्रम

सुंदर मृदु मृदु रज का तन,
चिर सुंदर सुख दुख का मन,
सुंदर शैशव यौवन रे
सुंदर सुंदर जग जीवन!

सुंदर वाणी का विभ्रम,
सुंदर कर्मों का उपक्रम,
चिर सुंदर जन्म मरण रे
सुंदर सुंदर जग जीवन!

सुंदर प्रशस्त दिशि अंचल,
सुंदर चिर लघु, चिर नव पल,
सुंदर पुराण नूतन रे
सुंदर सुंदर जग जीवन!

सुंदर से नित सुंदरतर
सुंदरतर से सुंदरतम,
सुंदर जीवन का क्रम रे
सुंदर सुंदर जग जीवन!

फ़रवरी, १६३२]

जीवन वसंत

जग जीवन नित नव नव,
प्रतिदिन, प्रतिक्षण उत्सव !

जीवन शाश्वत वसंत,
अगणित कलि कुसुम वृंत,
सौरभ सुख श्री अनंत,
पल पल नव प्रलय प्रभव !

रवि शशि ग्रह चिर हर्षित
जल स्थल दिशि समुल्लसित,
निखिल कुसुम कलि सस्मित,
मुदित सकल हों मानव !

आशा, इच्छानुराग,
हो प्रतीति, शक्ति, त्याग,
उर उर में प्रेम आग,
प्रेम स्वर्ग मर्त्य विभव !

ज्योत्स्ना से]

मंगल गान

मंगल चिर मंगल हो।
मंगलमय सचराचर,
मगलमय दिशि पल हो। मंगल०

तमस मूढ़ हों भास्वर,
पतित क्षुद्र, उच्च प्रवर,
मृत्यु भीत, नित्य अमर,
अग जग चिर उज्वल हो। मंगल०

शुद्ध बुद्ध हों सब जन,
भेद मुक्त, निर्भय मन,
जीवित सब जीवन क्षण,
स्वर्ग यहीं भूतल हो। मंगल०

लुप्त जाति - वर्ण - विवर,
सुप्त अर्थ - शक्ति - भँवर,
शांत रक्त तृष्ण समर,
प्रहसित जग शतदल हो। मंगल०

ज्योत्स्ना से]

गीत खग !

(क)

तेरा कैसा गान,
विहंगम ! तेरा कैसा गान ?
न गुरु से सीखे वेद पुराण,
न षड्दर्शन, न नीति विज्ञान;
तुझे कुछ भाषा का भी ज्ञान,
काव्य, रस, छंदों की पहचान ?
न पिक प्रतिभा का कर अभिमान,
मनन कर, मनन, शकुनि नादान !

हँसते हैं विद्वान,
गीत खग, तुझ पर सब विद्वान !
दूर छाया-तरु वन में वास,
न जग के हास अश्रु ही पास;
अरे, दुस्तर जग का आकाश,
गूढ़ रे छाया ग्रथित प्रकाश;
छोड़ पंखों की शून्य उड़ान,
वन्य खग ! विजन नीड़ के गान ।

(ख)

मेरा कैसा गान,
न पूछो मेरा कैसा गान !
आज छाया वन वन मधुमास,
मुग्ध मुकुलों में गंधोच्छ्वास;
लुढ़कता तृण तृण में उल्लास,
डोलता पुलकाकुल वातास;
फूटता नभ में स्वर्ण विहान,
आज मेरे प्राणों में गान।

मुझे न अपना ध्यान,
कभी रे रहा, न जग का ज्ञान !
सिहरते मेरे स्वर के साथ
विश्व पुलकावलि-से तरु पात;
पार करते अनंत अज्ञात
गीत मेरे उठ सायं प्रात;
गान ही में रे मेरे प्राण,
अखिल प्राणों में मेरे गान।

जुलाई, १६२७]